डाक पंजीयन क्र. म.प्र. भोपाल/162/2018–20
पोस्टिंग दिनाँक : 15 अप्रैल 2020, पृष्ठ सं. 40
प्रकाशन दिनाँक: 15 अप्रैल 2020

आर.एन.आई.पं.क्र. MP HIN/2004/12178

ISSN 2319-3107

मूल्य ₹ 25/-

आंचलिक पत्रकार

456

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

पत्रकारिता : आदर्श मूलक प्रतिमान और चतुर्वेदी जी की भूमिका...

'एक भारतीय आत्मा'

माखनलाल चतुर्वेदी

जन्म : ४ अप्रैल १८८६ ♦ निधन : ३० जनवरी १९६८

सम्मति

हम सब लोग
बात करते हैं, बोलना तो
माखनलाल जी ही जानते हैं।

❖ ❖ ❖

मैं बाबई जैसे छोटे स्थान पर इसलिए जा रहा हूँ, क्योंकि वह माखनलाल जी का जन्म स्थान है। जिस भूमि ने माखनलाल जी को जन्म दिया है, उसी भूमि को मैं सम्मान देना चाहता हूँ।

● महात्मा गांधी
(७ दिसंबर १९३३)

सा विद्या या विमुक्तये

पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

http://www.anchalikpatrakar.com

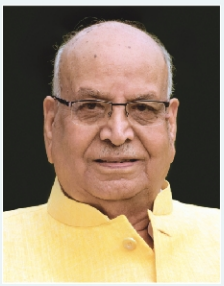

सत्यमेव जयते
राज्यपाल, मध्यप्रदेश

अपील

प्रिय प्रदेशवासियो,

कोरोना वायरस आज एक गंभीर चुनौती के रूप में हमारे सामने उपस्थित है, सारी दुनिया इसकी चपेट में है। यह एक महामारी का आकार ले रहा है। हमारे देश में बहुत पहले से ही इसके नियंत्रण के प्रयास शुरू हो गये थे, इसी की सफलता है कि भारत में एक भी रोगी नहीं हुआ है। जो लोग विदेशों से आ रहे हैं और जो लोग उनके संपर्क में आये हैं वही पीड़ित हैं। इसका अभी तक कोई इलाज नहीं है इसलिए प्रधानमंत्री जी ने अपने संदेश में बताया है कि यह वायरस विदेश से आने नहीं पाये और आ जाये तो देश में बढ़ने ना पाये, इस संबंध में उन्होंने समुचित व्यवस्था के निर्देश दिए हैं। प्रधानमंत्री जी के प्रयासों को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यदि आपके आस–पास कोई विदेश से आया व्यक्ति है और उसमें रोग के प्रारंभिक लक्षण दिख रहे हैं तो तत्काल पुलिस प्रशासन को सूचित करें।

मैं आप सबको आश्वस्त करता हूँ कि भारत में वह शक्ति है कि वह इस रोग को पराजित कर देगा। इस बात की आवश्यकता है कि हम सब अपनी जीवन शैली में सुधार कर लें, थोड़ा सा संयम और विशेषज्ञों की सलाह का पालन करें। इस बात का भी अवश्य ध्यान रखें कि हर बुखार वायरस से पीड़ित होने का लक्षण नहीं है इसलिए घबराना नहीं है, आवश्यकता है कि तत्काल जांच करायें।

मेरी सभी प्रदेशवासियों से प्रार्थना है कि समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निष्ठा और ईमानदारी के साथ पालन करें। आप सभी को यह सलाह दी जा रही है कि लोगों से सम्पर्क में संयम बरतें। समाज के सभी वर्ग व्यापारी, अधिकारी आदि सभी की जिम्मेदारी है कि जो रोगी नहीं हैं और उनके आमदनी के जरिये बंद हो गये हैं उनको दिक्कत नहीं हो। इन संकट की परिस्थितियों का लाभ उठाने वालों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जायेगी। प्रशासन पूरी तरह से प्रतिबद्ध है कि सामग्री की आपूर्ति में बाधा डालने वालों पर कठोर कार्यवाही की जायेगी। सामग्री की आपूर्ति व्यवस्था किसी भी अवस्था में बाधित नहीं होगी। इसके पूरे पुख्ता प्रबंध किये गये हैं इसलिए इसकी चिंता से मुक्त रहें।

प्रदेशवासियों यह संकट की घड़ी मिल–जुल कर कोरोना से संघर्ष की है, हम सबकी यह जिम्मेदारी है कि हम उन लोगों की जो दिहाड़ी मजदूरी करते हैं और जिनकी आमदनी बंद हो गयी है उनकी भी चिंता करें। यह व्यवस्था करें कि जो कर्मचारी और मजदूर आपके लिए कार्य करते हैं उनका वेतन नहीं काटें, उनके भोजन इत्यादि की व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी ग्रहण करें। इन कठिन परिस्थितियों में यदि कोई व्यक्तिगत लाभ के लिए कार्य करता दिखे तो तत्काल उसकी सूचना पुलिस को दें। जहां कहीं से भी किसी प्रकार की अभाव की सूचना आयेगी उसको पूरा करने की जिम्मेदारी भी सुनिश्चित की जायेगी।

प्रधानमंत्री जी की मार्मिक अपील का समाज में गहरा संदेश गया है। उनके द्वारा बताई गई जिम्मेदारियों का पालन करना हम सबका दायित्व है। यह हर्ष का विषय है कि प्रदेशवासी उनकी सलाह का पालन कर रहे हैं, उसके स्पष्ट प्रभाव भी दिख रहे हैं। मैं आप सभी से कहना चाहता हूँ कि थोड़े दिन का संयम पूरे देश और समाज को इस संकट से बचा सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यदि आपको किसी प्रकार का कष्ट भी होता है तो उसको सहन कर इस रोग को फैलने से रोकें।

प्रदेशवासियों और मीडिया से अपील है कि वे किसी प्रकार के भ्रम की स्थिति निर्मित नहीं होने दें। यह प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदारी है कि वह रोग से बचाव की एडवाइजरी का पूरी कड़ाई के साथ पालन करे। उसमें किसी प्रकार की ढिलाई नहीं बरतें। मुझे विश्वास है कि हमारे देश का पारम्परिक चिकित्सा ज्ञान इतना समृद्ध है कि शीघ्र ही इसका इलाज सामने आयेगा।

इसलिए बिना चिंता किये कोरोना से लड़ने और उसे पराजित करने में सहयोग करें। एक बार फिर याद रखें कि मौसमी बुखार वायरस का प्रकोप नहीं है, केवल जहां विदेश से व्यक्ति आये हैं उनके संपर्क में जो लोग आये हैं वह कोरोना की जांच करायें। आपका संयम और कठोर आचरण कोरोना पर जल्द ही काबू पाने में सफल होगा। डरें नहीं, कोरोना से लड़ें।

शुभकामनाओं सहित

लाल जी टंडन
राज्यपाल, मध्यप्रदेश

आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2020
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी
R.O. No. D-17002

ISSN 2319–3107

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

अप्रैल – 2020

वर्ष–39, अंक–8, पूर्णांक–456

एक प्रति ₹ 25/– वार्षिक ₹ 250/–

आंचलिक पत्रकार

पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

अनुक्रम

1.	आचार्य किशोरीदास वाजपेयी		4
2.	पत्रकारिता : आदर्श मूलक प्रतिमान ...	डा. कृष्ण बिहारी मिश्र	5
3.	मीडिया और विकल्प	रघु ठाकुर	12
4.	अकबर इलाहाबादी के दो शे'रों	विजयदत्त श्रीधर	16
5.	आइंस्टीन और महात्मा गांधी		18
6.	बांग्लादेश मुक्ति संग्राम ...	नंदिनी सिन्हा	23
7.	कल्पतरु की उत्सव लीला	श्रीपर्णा तरफदार	27
8.	'कर्मवीर के सौ साल' महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ	डा. गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया	32
9.	खबर खबरवालों की	संजय द्विवेदी	36

"अमीर की अमीरी जितनी बढ़ेगी, गरीब की गरीबी भी बढ़ती ही चली जाएगी। वर्ग-समन्वय असंभव है। किन्तु हम वर्ग-निराकरण के साथ व्यक्तियों का समन्वय अवश्य चाहते हैं। अमीरी और गरीबी को खत्म करने के लिए अमीर और गरीब दोनों का सहयोग चाहिए। इससे वर्ग-निराकरण होगा और मानवता का विकास होगा। – **दादा धर्माधिकारी**"

E-mail
sapresangrahalaya@yahoo.com
editor.anchalikpatrakar@gmail.com
☎ (0755) 2763406, मोबा. 9425011467
7999460151 https://www.facebook.com/vijaydutt.shridhar.9

संपादकीय पत्र व्यवहार
संपादक, 'आंचलिक पत्रकार'
माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान
मेन रोड नं. 3, भोपाल (म.प्र.) 462003

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी
मान का सम्मान

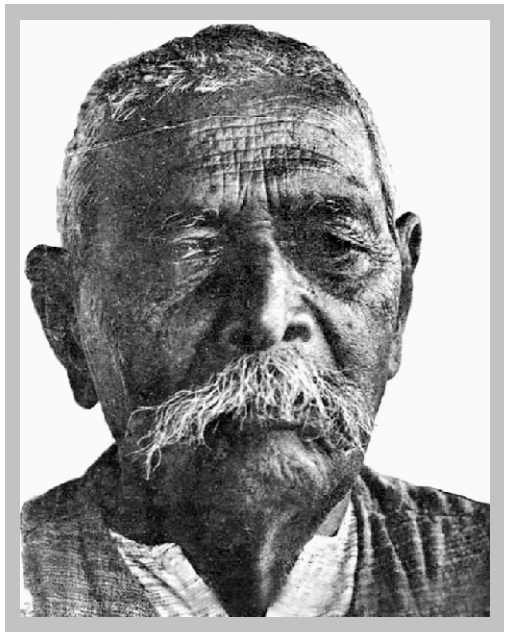

उन दिनों श्री मोरारजी देसाई प्रधानमन्त्री थे । वे उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान का सम्मान देने के लिए पधारे। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का नाम पुकारा गया। एक बार, दो बार, तीन बार उनका नाम पुकारा गया, किन्तु आचार्य किशोरीदास वाजपेयी मंच पर नहीं गए।

मोरारजी देसाई ने पूछा कि वह आए भी हैं या नहीं ? उन्हें बताया गया कि आए हैं और वह सामने बैठे भी हैं। मोरारजी देसाई गांधीवादी थे, बात समझ गए। वह तुरंत मंच से उतरकर किशोरीदास वाजपेयी के पास आए और उन्हें उनके आसन पर ही संस्थान के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित किया।

इस घटना की अखबारों में खूब चर्चा हुई। रघुवीर सहाय ने 'दिनमान' में लिखा कि यह पहली बार है कि फोटो में सम्मान लेने वाले का चेहरा दिखा है और देने वाले की पीठ। वास्तव में वाजपेयी जी उस वातावरण से खिन्न थे, जिसमें साहित्य-मनीषियों ने राजनेताओं के सामने अपना स्तर गिरा लिया था। वाजपेयी जी ने 'नवभारत टाइम्स' में लेख लिखा था 'शंबूक का वध'। इसमें उन्होंने तत्कालीन आचार्यों और हिन्दी विभागाध्यक्षों पर टिप्पणी की थी कि किस प्रकार से तप की अवमानना और चमचागीरी का आदर हो रहा है। उनकी स्मृतियों को प्रणाम ! ❑❑

'कर्मवीर' - सम्पादक का और उनकी उज्ज्वल विरासत का विधिवत स्मरण आज अधिक प्रासंगिक है क्योंकि रंगीन प्रलोभनों में फँसी साम्प्रतिक पत्रकारिता, पत्रकारिता की मूल प्रतिज्ञा को छोड़कर सनकी मुद्रा में सामाजिक मूल्यों का संहार करने लगी है। इस अधोगामी दशा का अन्दाज पुराने पत्रकारों को था।

पत्रकारिता : आदर्श मूलक प्रतिमान पं. माखनलाल चतुर्वेदी की भूमिका

■ डा. कृष्ण बिहारी मिश्र

यह प्रीतिकर संयोग है कि हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मालवीयजी के जीवन के आदर्श और संघर्ष कथा तथा पं. माखनलाल चतुर्वेदी के जीवनादर्श में बड़ा साम्य था। ओज और सारल्य का विरल समन्वय दोनों के व्यक्तित्व का प्रमुख लक्षण था। मालवीय जी के उपास्य चरित्र वासुदेव पं. माखनलाल जी के आदर्श थे। दोनों के लिए राजनीति का धवल धरातल काम्य था। भारतीय राजनीति में शीर्ष पुरुष के रूप में सम्मानित मालवीय जी ने अपनी जीवन-साधना में शिक्षा को वरीयता दी। राजनीति की उग्र पंथा से सक्रिय रूप में युक्त पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने स्वधर्म-साधना के लिए अपने को राजनीति से अलग कर लिया तब जब तपस्या और बलिदान की बेला बीत गई और भोग की राजनीति शुरू हुई। अपनी कठोर तपस्या और त्याग का भारी से भारी पुरस्कार माखनलाल जी आजाद देश की राजनीति से वसूल सकते थे, किन्तु देश की अस्मिता के उद्धार के लिए प्राणाहुति देने की प्रेरणा से राजनीतिक सरणि पकड़ने वालों का संस्कार उनसे सर्वथा भिन्न रहा है, जो देश-सेवा की जाली सनद बनवाकर पद और पैसे को अधिकृत करने के लिए आकुल-व्याकुल रहते हैं। माखनलाल जी उस आलोक परम्परा के कृती पुरुष थे, जिसकी रचना में महामना मालवीयजी की जीवन-साधना की विशिष्ट भूमिका थी। जिस हिन्दी की सेवा को मालवीय जी देशसेवा का पर्याय मानते थे उसी हिन्दी के शीर्षस्थ कवि, अप्रतिम गद्यशिल्पी और प्रख्यात पत्रकार थे पं. माखनलाल चतुर्वेदी। विज्ञप्त तथ्य है, मालवीय जी का हिन्दी पत्रकारिता से नींव-निर्माण काल से ही, सक्रिय सम्बन्ध था। यद्यपि राजनीति और शिक्षा ही उनका मुख्य साधना-क्षेत्र था, किन्तु हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में उनका विशिष्ट स्थान है। पं. माखनलाल जी का भी मुख्य परिचय पत्रकार नहीं कवि के रूप में दिया जाता है और यही उचित भी है, उनकी संवेदना और साधना को देखते। किन्तु मालवीय जी और माखनलाल जी तथा दूसरे और भी अनेक विद्या विशिष्ट एवं प्रातिभ पुरुष तिलक और अरविन्द जैसे मनीषी ने पत्रकारिता को देश सेवा का सशक्त माध्यम मानकर उसे अपनी साधना सरणि के रूप में चुना था। तब साम्राज्यशाही शिकंजे से देश को मुक्त करने की चिन्ता प्रधान चिन्ता थी। देशोद्धार की उपयुक्त पंथा के रूप में ही तब पत्रकारिता को सक्षम लोगों ने अपनाया था। जैसे मनीषी, कवि और विद्या-साधकों ने पराधीनता काल में राजनीतिक सक्रियता को आपद्धर्म के रूप में

शीर्ष महत्व का दायित्व समझा था। देश-प्रीति की प्रेरणा और जातीय संकट के आग्रह से ही लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द और पं. माखनलाल चतुर्वेदी राजनीति और पत्रकारिता से जुड़े थे।

माखनलाल जी के आदर्श थे लोकमान्य तिलक। उन्हें उग्र राष्ट्रवाद की दीक्षा दी थी, बंग प्रवासी और बांग्ला के प्रख्यात लेखक-पत्रकार मराठी भाषी पं. सखाराम गणेश देउस्करजी ने। देउस्करजी न केवल पं. माखनलाल चतुर्वेदी बल्कि अपने भाँजे पं. बाबूराव विष्णु पराडकर, पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे और पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी जैसे शीर्षस्थ हिन्दी पत्रकारों के प्रेरणा पुरुष थे।

पं. माधवराव सप्रे को चतुर्वेदी जी अपना गुरु मानते थे। उग्र राष्ट्रवाद ही पं. माखनलाल चतुर्वेदी का सजातीय भाव था, जो उनकी पत्रकारिता और साहित्य में विविध मुद्राओं में अभिव्यक्त हुआ है। यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि लोकमान्य तिलक को अपना उपास्य मानने वाले पं. माखनलाल जी की वैष्णव निष्ठा और प्रगतिशील दृष्टि उन्हें गांधी जी की राह पर सहज ही खींच ले गई। तिलक पंथी चतुर्वेदी जी की प्रतिभा महात्मा गांधी और उत्तरकाल में विनोबा भावे की हिमायत में मुखर हुई। स्मरणीय है कि बार्द्धक्य-काल में भी 'एक भारतीय आत्मा' की उदग्र मुद्रा म्लान नहीं हुई थी। विनोबा को समय का रहनुमा मानने वाले हिन्दी के बूढ़े कवि 'एक भारतीय आत्मा' ने - साठ के दशक में जब देश के स्वाभिमान पर बाहरी शक्ति ने आघात किया था, देश की तरुणाई को अपनी ओजस्वी मुद्रा में हाँक लगाई थी, देश के लिए प्राणाहुति देने के उपयुक्त मुहूर्त की घोषणा की थी और कर्मवीर की युवा ऊर्जा की याद ताजा हो गई थी। कर्मवीर का डिक्लरेशन लेते समय उन्होंने जिस चारित्रिक दृढ़ता का प्रमाण दिया था वह शेष तक अशिथिल रही। तिलक पंथी युवा माखनलाल जी ने आयरिश मजिस्ट्रेट को उदग्र अंदाज में मुँह तोड़ जवाब दिया था, वही उदग्रता उनकी वाणी में तब जाग्रत हुई थी जब मित्र राष्ट्र के विश्वासघात का वे 1962 में यानी अपनी बुढ़ौती में पूरी शक्तिमत्ता के साथ प्रतिवाद कर रहे थे -

बूढ़ों की क्या बात युगों की
तरुणाई के दिन आये हैं,
चट्टानों, खन्दकों, पहाड़ों की
खाई के दिन आये हैं।
गंगा माँग रही है मस्तक,
जमना माँग रही है सपने,
आज जवानी स्वयं टटोले
सिर-हथेलियाँ अपने-अपने।
चलो सजाओ सैन्य, समय
की भरपाई के दिन आये हैं,
आज प्राण देने के, युग की
तरुणाई के दिन आये हैं।

सन 1930 का युवा तेवर स्मरणीय है। कर्मवीर के प्रादुर्भाव प्रसंग को स्मरण करते पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने जीवनी-लेखक से कहा था, ''जिला मजिस्ट्रेट मि. मिथाइस से, मिलने पर जब मुझसे पूछा गया कि एक अँगरेजी वीकली के होते हुए मैं हिन्दी साप्ताहिक क्यों निकालना चाहता हूँ, तब मैंने उनसे निवेदन किया कि आपका अँगरेजी साप्ताहिक तो दब्बू है। मैं वैसा पत्र नहीं निकालना चाहता। मैं ऐसा पत्र निकालना चाहूँगा कि ब्रिटिश शासन चलते-चलते रुक जाये।''

यही चारित्रिक बल और देश माता के उद्धार के लिए कठोर चुनौतियों से पंजा लड़ाने तथा खतरों से खेलने का सहज उत्साह पूर्व स्वातंत्र्य-काल की पत्रकारिता की ज्वलंत पहिचान है और दुर्भाग्यवश आजाद देश की चारित्रिक धुरी ही शिथिल हो गई। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को पुरानी पीढ़ी की चारित्रिक ऊष्मा और साम्प्रतिक काल के चारित्रिक स्खलन को रेखांकित करते अज्ञेय ने

लिखा है, ''हिन्दी पत्रकारिता के आरम्भ के युग के हमारे पत्रकारों की जो प्रतिष्ठा थी, वह आज नहीं है। साधारण रूप से तो यह बात कही जा सकती है, अपवाद खोजने चलें तो भी यही पावेंगे कि आज का एक पत्रकार या सम्पादक, वह सम्मान नहीं पाता जो कि पचास-पचहत्तर वर्ष पहले के अधिकतर पत्रकारों को प्राप्त था। आज के सम्पादक-पत्रकार अगर इस अन्तर पर विचार करें तो स्वीकार करने को बाध्य होंगे कि वे न केवल कम सम्मान पाते हैं बल्कि कम सम्मान के पात्र हैं - या कदाचित सम्मान के पात्र बिल्कुल नहीं हैं, जो पाते हैं वह पात्रता से नहीं इतर कारणों से।''

''पत्रकार, सम्पादक, आलोचक की अप्रतिष्ठा का प्रमुख कारण यह है कि उसके पास मानदंड नहीं हैं। यही हरिश्चन्द्रकालीन सम्पादक-पत्रकार-या उतनी दूर न जावें तो महावीरप्रसाद द्विवेदी का समकालीन भी हमसे अच्छा था। उसके पास मानदंड थे, नैतिक आधार थे और स्पष्ट नैतिक उद्देश्य भी। उनमें से अगर कुछ ऐसे भी थे जिनके विचारों को हम दकियानूसी कहते, तो भी उनका सम्मान करने को हम बाध्य होते थे, क्योंकि स्पष्ट नैतिक आधार पाकर वे उन पर अमल भी करते थे - वे चरित्रवान थे। आज विचार-क्षेत्र में हम अग्रगामी भी कहला लें तो कर्म के नैतिक आधारों की अनुपस्थिति में निजी रूप से हम चरित्रहीन ही हैं और सम्मान के पात्र नहीं हैं...। यह धारणा आजादी के पूर्व और पश्चात की हिन्दी पत्रकारिता को अपनी कृती भूमिका से विशिष्ट समृद्धि देने वाले व्यक्ति की है जो सुविधाजीवी पत्रकारों को आघात दे सकती है। किन्तु पीड़क तथ्य यह कि वह दायित्व-सजगता और बोध आज म्लान पड़ गया है कि पत्रकार की भूमिका एक सच्चे लोक-नायक की भूमिका होती है। इतना ही नहीं एक मनीषी साहित्यकार की तरह दिशाहारा समाज को अपेक्षित दिशा निर्देश देना, अतीत ज्ञान सम्पदा और देश की चिति पर छा रहे कुहासे को अपनी

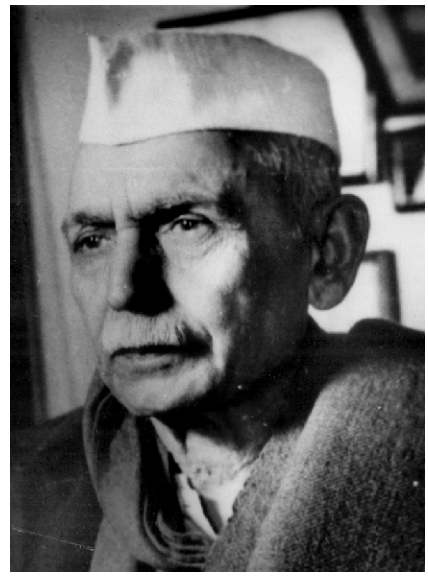

वाग-दीप्ति से विदीर्ण करना, खंडित संस्कृति-चेतना के उन्नयन की सक्रियता, रूढ़ि-विवर्जित प्रज्ञा की रचना के प्रति प्रातिभ सजगता और थथमग्रस्त वर्तमान को गत्वर भविष्य की ओर उन्मुख करना पत्रकार का शीर्ष दायित्व है। इस दायित्व-बोध के चलते पूर्ववर्ती पीढ़ी के पत्रकारों को द्वीपान्तरित होना पड़ा, जेल की असह्य यातना झेलनी पड़ी, प्राणाहुति देनी पड़ी। हिन्दी के महान पत्रकार पं. रुद्रदत्त शर्मा को भूखों मरना पड़ा, पं. अमृतलाल चक्रवर्ती को ऋणग्रस्त होना पड़ा और कर्ज न चुका पाने के अपराध में जेल जाना पड़ा। यह गर्व नहीं, ग्लानि का विषय है कि महत राष्ट्रीय दायित्व पूरा करने वाले हिन्दी पत्रकारों को अपनी सामान्य गार्हस्थिक जिम्मेदारी पूरी करने में असमर्थ होने के कारण चरम अपमान झेलना पड़ा, भोजन और औषधि के अभाव में मृत्यु को वरण करना पड़ा। उन्हीं पत्रकारों के सगोत्री थे कर्मवीर सम्पादक पं. माखनलाल चतुर्वेदी। आप सब जानते हैं 'भारतीय आत्मा' की अनेकमुखी साधना से दीप्त खंडवा का जो कर्मवीर कार्यालय भवन हिन्दी का प्रमुख तीर्थ बन गया था, वहाँ से कर्मवीर-सम्पादक को वार्द्धक्य काल में हटाने के

लिए उसके जातीय अवदान को नजरअन्दाज कर, आजाद देश की व्यवसाय बुद्धि ने कानूनी कार्रवाई की थी! और पं. माखनलाल जी की सत्याग्रही सेना के छुटभइये सरकारी प्रासाद के विलास में मगन थे। कर्मवीर-सम्पादक की जागरूक दृष्टि में तप और भोग का असंतुलन स्पष्ट था। महान प्रयोजन से अपनी हड्डियाँ गलाकर साधन-शक्ति और मुक्त आबोहवा की रचना करने वाले तथा अपनी तिकड़म बुद्धि से उसका लाभ लूटने वाले के अन्तर को माखनलाल जी की जागरूक प्रज्ञा समझती थी।''

25 सितम्बर 1925 के कर्मवीर की सम्पादकीय टिप्पणी का शीर्षक है - किसानों का सवाल। भारतीय किसानों की महत्ता और उनकी दुर्दशा को उजागर करते पं. माखनलाल जी ने किसानों की तपस्या का फल भोगने वाले साधन-सम्पन्न लोगों को प्रकारान्तर से चेतावनी दी थी, ''उसे पता नहीं कि संसार में जन्म लेकर आने के बाद उसका काम संकट उठाना और कुत्ते-बिल्लियों की तरह जीवन बिताना और अनाज पैदा करके संसार के राक्षसों का पोषण करना ही नहीं है। उसे नहीं मालूम कि धनिक तब तक जिन्दा है, राज्य तब तक कायम है, ये सारी कौंसिलें तब तक हैं, जब तक वह अनाज उपजाता है और मालगुजारी देता है। जिस दिन वह इनकार कर दे उस दिन समस्त संसार में महाप्रलय मच जायेगा। उसे नहीं मालूम कि संसार का ज्ञान, संसार के अधिकार और संसार की ताकत उससे किसने छीनकर रखी है और क्यों छीन रखी है? वह नहीं जानता कि जिस दिन वह अज्ञान इनकार कर उठेगा उस दिन ज्ञान के ठेकेदार स्कूल फिसल पड़ेंगे, कालेज नष्ट हो जावेंगे और विश्वविद्यालय धूल में मिल जायेंगे। उसे नहीं मालूम कि जिस दिन उसका खून चूसने के लिए न होगा, उस दिन देश में यह उजाला, यह चहल-पहल, यह कोलाहल न होगा।''

चहल-पहल और विलास में डूबे आजाद देश के राजनेताओं को आजादी की आबोहवा रचने वाले तपस्वियों के बलिदान का बोध कराने वाले पत्रकार आज विरल हो गए हैं। मूल्यों के पहरुए अपनी भूमिका से स्खलित हो गए हैं। इतिहास के पन्नों पर यह तथ्य अंकित है कि पराधीनता काल के पत्रकारों को देश के दुर्भाग्य मोचन के लिए कई मोर्चों पर कठोर संघर्ष करना पड़ा था। हिन्दी पत्रकारिता ही नहीं, उत्तर उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों की संपूर्ण भारतीय पत्रकारिता का आदर्श-उद्देश्य एक था। उनके पीछे एक ही प्रेरणा थी - शुद्ध राष्ट्रीय प्रेरणा। वन्देमातरम् के संबंध में श्री अरविन्द ने लिखा है, ''इसका जन्म एक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति और समष्टि हित के उद्देश्य से हुआ था, न कि किसी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर व्यक्ति सुख के लिए। इसका आविर्भाव उस विशेष काल में हुआ था जो जातीय संक्रान्ति का काल था।'' उस संक्रान्ति काल में भारतीय पत्रकारों ने - लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, श्री अरविन्द घोष, ब्रह्मबान्धव उपाध्याय, कस्तूरी रंगा अय्यंगार, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, मोतीलाल घोष, महामना मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, दुर्गाप्रसाद मिश्र, सदानन्द मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, सखाराम गणेश देउस्कर, रुद्रदत्त शर्मा, अमृतलाल चक्रवर्ती, माधवराव सप्रे, बाबूराव विष्णु पराडकर, रामानन्द चटर्जी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे, माखनलाल चतुर्वेदी तथा गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे मनीषी पत्रकारों ने जोखिम भरी जातीय जिम्मेदारी विधिवत पूरी की और स्वातंत्र्य संग्राम के इतिहास में उनकी अग्रणी भूमिका को टाँका गया।

'सुबोध सिन्धु' पं. माखनलाल चतुर्वेदी के लिए पत्रकारिता का प्रवेश द्वार था। मराठी साप्ताहिक 'सुबोध सिन्धु' का हिन्दी संस्करण

1910 के आसपास माणिकचन्द जैन के संरक्षण में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद 'प्रभा', 'कर्मवीर' और 'प्रताप' प्रमुख पत्र हैं जिनके सम्पादक के रूप में पं. माखनलाल चतुर्वेदी पूरे हिन्दी जगत में ख्यात और सम्मानित हुए। दिनाँक 7 अप्रैल 1913 को 'प्रभा' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ था। 'प्रभा' सचित्र मासिक पत्रिका थी, जिसके विविध विषयों की अधिकांश सामग्री माखनलाल जी को स्वयं तैयार करनी पड़ती थी, यद्यपि लेखकों का सहयोग उसे मिलने लग गया था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी सरस्वती में 'प्रभा' की प्रशंसा की थी। पं. माखनलाल जी की युवा प्रतिभा की अभिव्यक्ति 'प्रभा' के पृष्ठों पर मुखर है। 'प्रभा' उनके सम्पादन में दो वर्षों तक निकली और उसकी ज्योति ने सम्पूर्ण हिन्दी संसार को स्पर्श किया। 'प्रताप' सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी के जेल जाने पर श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल के आग्रह पर पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने अक्टूबर 1923 से मार्च 1924 तक 'प्रताप' का सम्पादन किया।

17 जनवरी 1920 को जबलपुर से पं. माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पादन में 'कर्मवीर' प्रकाशित हुआ। पं. माखनलाल जी की गिरफ्तारी के चलते 'कर्मवीर' का प्रकाशन कुछ समय के लिए अवरुद्ध हो गया। पुन: 4 अप्रैल 1925 से इसका प्रकाशन खंडवा से शुरू हुआ और चतुर्वेदी जी के सम्पादन में 11 जुलाई 1959 तक निकलता रहा। 'कर्मवीर' की प्रथम संपादकीय टिप्पणी में माखनलाल जी ने लिखा था, ''यह अकेले रहने और टुकड़े-टुकड़े होने का युग नहीं है।'' आज से सत्तर वर्ष पूर्व देश को सचेत करते 'कर्मवीर' सम्पादक ने जो बात कही थी, भारत के साम्प्रतिक संदर्भ में उसका महत्व बढ़ गया है, जब विच्छिन्नतावादी शक्तियाँ देश की जातीय धुरी को क्षत करने के लिए सनकी मुद्रा में उठ रही हैं। जातीय आबोहवा की वर्तमान हिंसा-मुद्रा को देखते 'कर्मवीर' की भूमिका सहज ही स्मरण हो आती है। जो आज के पत्रकारों और राजनेताओं को सही दिशा निर्देश दे सकती है। राष्ट्रीय-हलचल पर टिप्पणी करते 20 मार्च 1920 को 'कर्मवीर' सम्पादक ने लिखा था, ''शस्त्र लेना, यह पथ कमजोरों का है। इस पथ के पापियों ने सभ्यताओं का संहार किया है और मेदिनी के शरीर के खून के झरने बहाये हैं।'' स्मरणीय है, गांधी जी का सत्याग्रह आंदोलन उठान पर था। सत्याग्रह में अपनी आस्था प्रकट करते, तिलकपंथी पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने सत्याग्रह की महत्ता को 24 जनवरी 1920 को कर्मवीर के सम्पादकीय वक्तव्य द्वारा रेखांकित किया था, ''सत्याग्रह वहाँ भी विजयी होता है जहाँ कमान्डरों की क्रूरता मनुष्यता को रक्त स्नान करा रही हो।'' इस प्रकार गांधी जी, के सत्याग्रह आन्दोलन के प्रति 'कर्मवीर' देश में अनुकूल आबोहवा तैयार करने में क्रियाशील था। इसी वर्ष यानी 5 सितम्बर 1920 को काशी से पं. बाबूराव विष्णु पराडकर के सम्पादन में दैनिक 'आज' का प्रकाशन हुआ। लोकमान्य तिलक को श्रद्धांजलि देते 'आज' की प्रथम सम्पादकीय टिप्पणी में पराडकर जी ने तिलक के निर्देश को स्मरण किया था, ''सबसे प्रधान उपदेश यही था कि स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करो, लोगों को उनके स्वाभाविक अधिकार समझा दो तथा धर्मत: कर्तव्य पालन करते हुए भी यदि विघ्न उपस्थित हो तो उसकी परवाह मत करो और ईश्वर के न्याय पर विश्वास रखो। यह उपदेश पालन करना हमारे जीवन का उद्देश्य होगा।'' न केवल पराडकर जी बल्कि उस युग की पत्रकारिता इसी आदर्श उद्देश्य से प्रेरित थी। लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द, बाबूराव विष्णु पराडकर, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी एक ही संवेदना के पत्रकार संपादक थे, जिनके व्यक्तित्व में जातीय अभीप्सा स्फूर्त थी और लोक-शिक्षण जिनका धर्म था और अपने धर्म की महत्ता से वे भली प्रकार परिचित थे, उसकी रक्षा और समृद्धि

प्रभा

सुप्रभात।

कर्मवीर

संसार प्रसिद्ध।

सप्रे संग्रहालय भोपाल

के लिए पूरी तरह सचेत-सक्रिय थे। स्वाभाविक था कि उस काल की युवा ऊर्जा को 'प्रताप', 'कर्मवीर' और 'आज' से भरपूर पोषण मिलता था। हिन्दी भाषी क्षेत्र की जागरूक युवा पीढ़ी के आदर्श थे बाबूराव विष्णु पराडकर, माखनलाल चतुर्वेदी और गणेशशंकर विद्यार्थी। उर्दू के महान शायर फिराक गोरखपुरी ने स्वीकार किया है कि 'कर्मवीर' में पं. माखनलाल चतुर्वेदी के लेख मेरे जैसे लाखों देश निवासियों में गुलामी के खिलाफ ऐसा जोश पैदा कर देते थे जिसे भुलाया नहीं जा सकता। इनके लेखों को पढ़ने से ऐसा मालूम होता था कि आदि शक्ति शब्दों के रूप में उतर रही है। यह हिन्दी में ही नहीं, भारत की दूसरी भाषाओं में भी विरले ही लोगों को नसीब हुई। मुझ जैसे हजारों लोगों ने अपनी भाषा और लिखने की कला माखनलाल जी से सीखी।'' वह पीढ़ी थी जिसके चरित्र के धवल धरातल को पैसे और प्रभुता का प्रलोभन प्रदूषित नहीं कर सकता था। लोकनायक की गुरुतर भूमिका पूरी करने के लिए चारित्रिक दृढ़ता और धवलता पहली शर्त है। इसी बल पर पराडकर जी, माखनलाल जी, गणेशशंकर विद्यार्थी और उनके गोत्र के दूसरे पत्रकारों ने अपने गुरुतर दायित्व को, नाना विपत्तियों और प्रत्यूहों से जूझते हुए पूरा किया और अपनी धर्म-साधना से तुष्ट रहे, यद्यपि अपने आदर्श की रक्षा करते उन्हें जागतिक अभाव जनित दंश की आँच में झुलसना पड़ा। अपनी भूमिका को स्मरण करते गर्व-स्फूर्त मुद्रा में पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा है, ''मैंने तो जर्नलिज्म में साहित्य को स्थान दिया है। बुद्धि के ऐरावत पर म्युनिसिपल का कूड़ा ढोने का जो अभ्यास किया जा रहा है अथवा ऐसे प्रयोग से जो सफलता प्राप्त की जा रही है उसे मैं पत्रकारिता नहीं मानता। निन्दा और स्तुति के ग्राहकों को छोड़कर केवल गुणग्राहकों का समूह रह जाता है जिस पर पत्र चलाना पड़ता है। इतनी धीरज और पाबंदी स्वीकार करनी पड़ती है तब भी केवल साप्ताहिक पत्र पर जीवनयापन का उदाहरण केवल 'कर्मवीर' है।

मैंने उसके द्वारा सरकार की कठोर से कठोर आलोचना की है। जब राजाओं और प्रजाओं की लड़ाई रियासतों में चलती थी तब प्रजा का सहायक था। पर ब्रिटिश सरकार और राजाओं की लड़ाई में राजाओं का सहायक रहा हूँ।''

पं. माखनलाल जी मूलत: कवि थे। वे अपने मूल धर्म के प्रति पूर्ण सचेत थे। उनकी पत्रिका 'प्रभा' और 'कर्मवीर' साहित्यिक सांस्कृतिक

सामग्री से सम्पन्न थी। माखनलाल जी की और परवर्ती काल के अज्ञेय की कविता और पत्रकारिता के प्रति समान निष्ठा थी। अपने मूल धर्म की विधिवत रक्षा करते पत्रकारिता के सांस्कृतिक आयाम को समृद्ध करने वाली वैसी प्रातिभ सजगता विरल हो गई। कवि माखनलाल चतुर्वेदी और अज्ञेय विशिष्ट गद्य शिल्पी भी थे, इसलिए पत्रकारिता की भाषा को उन्होंने नयी मुद्रा से समृद्ध किया, भाषा के चालू शिल्प को तोड़ा और उसे साहित्य-भाषा के धरातल के करीब पहुँचाया। भाषा-संस्कार चेष्टा के मूल में स्वभाषा प्रीति ही नहीं, हिन्दी भाषी समाज के भाषा-संस्कार के उन्नयन की सहज चिन्ता थी। आज हिन्दी में असंख्य पत्र-पत्रिकाएँ समृद्ध साज-सज्जा के साथ निकल रही हैं, किन्तु एक भी ऐसी पत्रिका नहीं है जो हिन्दी के विवेक और प्रतिभा का समग्रता में प्रतिनिधित्व कर रही हो। इस गुरुतर दायित्व को सरस्वती की तरह 'प्रभा' और 'कर्मवीर' ने पूरा किया था। आजाद देश में वही कृती भूमिका 'प्रतीक' और 'कल्पना' ने पूरी की। हिन्दी गद्य को अपने स्वकीय शिल्प से माखनलाल जी ने विशिष्ट समृद्धि दी।

'कर्मवीर' - सम्पादक का और उनकी उज्ज्वल विरासत का विधिवत स्मरण आज अधिक प्रासंगिक है क्योंकि रंगीन प्रलोभनों में फँसी साम्प्रतिक पत्रकारिता, पत्रकारिता की मूल प्रतिज्ञा को छोड़कर सनकी मुद्रा में सामाजिक मूल्यों का संहार करने लगी है। इस अधोगामी दशा का अन्दाज पुराने पत्रकारों को था। वृन्दावन संपादक सम्मेलन के अवसर पर सुविधाजीवी और विलासप्रिय पत्रकारों के हीन आचरण पर टिप्पणी करते पराडकरजी ने कहा था, ''पत्र बेचने के लोभ से अश्लील समाचारों को महत्व देकर तथा दुराचरण मूलक अपराधों का चित्ताकर्षक वर्णन कर हम परमात्मा की दृष्टि में अपराधियों से भी बड़े अपराधी ठहर रहे हैं, इस बात को कभी न भूलना चाहिए। अपराधी एकाध पर अत्याचार करके दण्ड पाता है और हम सारे समाज की रुचि बिगाड़कर आदर पाना चाहते हैं।'' इसी विडम्बना और दुर्भाग्य से ग्रस्त है साम्प्रतिक पत्रकारिता। मगर आज के नामवर पत्रकारों को पुराने तत्वज्ञान से कुछ भी सरोकार नहीं है। उन्हें आधुनिकता का और तकनीकी विकास से चमकती पत्रकारिता की चटक मुद्रा का गुमान है। भोग-भूख के कायल पत्रकार सामाजिक औचित्य के पक्षधर और लोक मंगल के आग्रही न हों तो अचरज की बात नहीं है। इस स्खलन पर व्यथित चित्त पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने टिप्पणी की थी, ''दु:ख है कि सारे क्रांतिवाद, प्रगतिवाद और न जाने किन-किन वादों के रहते हुए हमने अपनी इस महान कला को प्राय: पूँजीपतियों के चरणों में अर्पित कर दिया है।''

आश्वासन यह है कि युवा पीढ़ी समझने लगी है कि पत्रकारिता भोग की माया में आज के राजनीतिकों की तरह फँसकर अपनी विधायक भूमिका से च्युत हो गई है। युवा पीढ़ी में ऊँचे आदर्श की भूख होती है। साम्प्रतिक राजनीति और पत्रकारिता उसे अपेक्षित पोषण देने में विफल सिद्ध हो रही है और युवा पीढ़ी तवारीख के पन्नों के प्रति सुमुख हो रही है। विकल्प-संधान की व्याकुल स्पृहा विरासत के आलोक-स्तंभों को स्पर्श करने लगी है। यह शुभ संभावना का संकेत है। कदाचित युवा ऊर्जा को विधायक दिशा की राह विरासत ही दिखाए, वही अपेक्षित विचार-पोषण दे और नयी प्रज्ञा का उदय हो, जो वर्तमान प्रदूषण-अंधकार को पराजित करने वाली ज्योति की रचना कर सके और जिन मूल्यों-आदर्शों के लिए पं. माखनलाल चतुर्वेदी की पीढ़ी कृती भूमिका रचती रही, उनकी सुरक्षा-सम्वर्द्धन का आश्वासन बोध जग सके।

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी भवन में पं. माखनलाल चतुर्वेदी शताब्दी-पर्व में पढ़ा गया आलेख)

मीडिया और विकल्प

■ रघु ठाकुर

मीडिया में प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अलावा लगभग पिछले दशक से एक नई मीडिया की विधा की शुरुआत हुई है, जिसे 'सोशल मीडिया' कहा जाता है। जब सोशल मीडिया की शुरुआत हुई थी तब उस समय ऐसा लगता था कि प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के एकाधिकार का विकल्प मिल गया है। पर अब स्थिति और भी भयानक हो गई है। अब हर व्यक्ति पत्रकार है और वह जो चाहे वो लिख सकता है। उसे किसी प्रमाण की, तथ्यों की, कोई जरूरत नहीं है। एक प्रकार का उत्तरदायित्वहीनता और अराजकता का दौर सोशल मीडिया से शुरू हो गया है। कौन-सा समाचार सही है, कौन-सा गलत है, अब तय करना मुश्किल है।

वैसे तो समूची दुनिया में पत्रकारिता और मीडिया इस अर्थ में संकटग्रस्त है कि वह पूँजी का दास बन गया है। इसी से जुड़ा हुआ जो दूसरा बड़ा संकट है वह मूल्यहीनता का है। भारत जैसे देशों में जहाँ का आम जीवन पिछली सदी में अपने जीवन मूल्यों और समाज मूल्यों के प्रति संवेदनशील रहा है, वहाँ मूल्यहीनता का संकट और ज्यादा गहरा लगता है।

भारतीय पत्रकारिता के काल को हम मोटे तौर पर चार भागों में बाँट सकते हैं -

1) आजादी के आंदोलन के दौर की पत्रकारिता जो राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ी थी, जिसमें बड़ी संख्या में पत्रकार व्यवसायी पत्रकार नहीं बल्कि आजादी के सिपाही और नायक भी थे।
2) आजादी के बाद लगभग दो दशक की पत्रकारिता जो लोकतंत्र और विकास उन्मुख थी।
3) आजादी के तीसरे दशक में पीत-पत्रकारिता का तेजी से विकास हुआ।
4) सन 1980 के दशक से 'विज्ञापन प्रवण' पत्रकारिता और पेड न्यूज का दौर आया। सन 1980 के बाद सरकारों ने मीडिया को नियंत्रित करने के लिए प्रेस सेंसरशिप के बजाय मीडिया को धन और सुविधाओं का लालच देना शुरू किया।

राजनीतिक पत्रकारिता में सत्ताधारी और सम्पन्न नेताओं के बड़े-बड़े साक्षात्कार, हर पेज पर 2-3 फोटो का चलन शुरू हुआ और यह एक प्रकार से इन नेताओं के प्रचार का ही हिस्सा होता था। ऐसे साक्षात्कार के लिए वह पत्रकारों को हवाई जहाजों से लाने ले जाने लगे। उन्हें पाँच सितारा होटलों में ठहराकर कई-कई दिनों तक खण्ड-खण्ड में साक्षात्कार आदि की व्यवस्था कराने लगे। उसके लिए फिर आकर्षक धन राशि का सिलसिला चल पड़ा। यह भी एक प्रकार से पेड न्यूज ही थी। कालान्तर में पेड न्यूज बढ़ते-बढ़ते नीचे कस्बाई स्तर तक पहुँच गई और सरकार से नीतिगत लाभ के लिए, मालिक के लिए सत्ता संबंधों के लिए, प्रधान सम्पादक की

जिम्मेवारी और नीचे के स्तर पर विज्ञापन का कोटा तथा उसके लिए संवाददाता / हाकर को पूरी छूट का सिलसिला चल पड़ा। इस प्रकार का 'फेक न्यूज' एवं 'पेड न्यूज' का जहर मीडिया की शिराओं में ऊपर से नीचे तक फैल गया।

इसके बाद फेक न्यूज का सिलसिला शुरू हुआ और अपने निजी या व्यावसायिक हितों के लिए झूठी खबरें गढ़ने का दौर शुरू हुआ। सन 1980 के दशक में संचार क्रांति, इंटरनेट, मोबाइल आदि के आगमन के बाद मीडिया दो हिस्सों में बँट गया। एक प्रिंट मीडिया और दूसरा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। संचार तकनीक का इस्तेमाल प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तेजी से शुरू हुआ और जहाँ एक तरफ क्षमताओं की गतिशीलता बढ़ी, पहुँच बढ़ी, वहीं दूसरी तरफ पत्रकारिता के रोजगार भी कम हुए। पत्रकारिता के क्षेत्र में हाथ से काम करने वाले प्रूफ रीडर, प्रिंटर जैसे पद तो समाप्त ही हो गए। लिखने वाले पत्रकारों की भी संख्या काफी घट गई और उनका काम मशीन से होने लगा। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने एक तूफान-सा खड़ा कर दिया और कोई भी समाचार चंद सेकण्डों में सजीव चित्रों के साथ देश तो छोड़ें - दुनिया के किसी भी कोने में भेजा जाने लगा। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और संचार तकनीक से यानी डिजिटल मीडिया से कागज पर छपने वाले अखबारों और उनके पढ़ने वालों में कमी आई है, यह अलग बात है कि मीडिया और छापा मीडिया घरानों के मालिक विज्ञापन के लिए अपनी प्रसार संख्या लाखों-करोड़ों बताते हैं। प्रसार संख्या और विज्ञापन हड़पने के हिस्से के रूप में संस्करणवाद शुरू हुआ और 'बंधित न्यूज' का एक नया स्वरूप सामने आया। जन संतुष्टि और पाठक संतोष के लिए समाचार (वे स्थानीय हों या राष्ट्रीय) स्थानीय संस्करणों में कैद किए जाने लगे तथा सत्ता समाचार-विज्ञापन समाचार-उपकृत समाचार भले ही वे कितने ही महत्वहीन या समाज विरोधी हों राष्ट्रीय स्तर पर स्थान पाने लगे।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तो पत्रकारिता का एक ऐसा दौर आया है कि जहाँ कैमरामेन जो फोटो और विज्ञप्ति साथ ले जाता है, वह ही पत्रकार बन गया है। मीडिया में अब खबरों को परोसने, उनका एकाधिकार बताने और सत्ता पर प्रभाव दिखाने की भी होड़ चल पड़ी है। ब्रेकिंग न्यूज के शीर्षक से एक ही खबर को बार-बार दोहराना और उसे सनसनीखेज बनाने का प्रयास करना 'एक्सक्ल्यूसिव' का जुमला दोहराना और शासन-प्रशासन से दोस्ताना संबंध बनाकर छिटपुट समस्या का हल कराना और फिर उसे अखबार का 'इंपेक्ट' बताना यह आम चलन बन गया है। हालात यहाँ तक बिगड़े हैं कि शब्द अपना अर्थ खोने लगे हैं। जिस प्रकार किसी दवा का असर उसकी निश्चित खुराक लगातार लेने से कुछ समय पश्चात मरीज पर असर करना कम देती है तथा परिणामस्वरूप उसे अपनी दवा की मात्रा बढ़ाना पड़ती है, यही हमारे मीडिया के साथ भी हो रहा है। अब लोग खबर पर ध्यान नहीं देते इसलिए बड़ी खबर, बड़ा हमला, जैसे वजनी शब्दों का इस्तेमाल करना मीडिया की लाचारी बन गया है। अब तो मीडिया मालिकों ने मीडिया की फ्रेंचाइजी देना भी शुरू किया है, इतना पैसा दो, जो करना हो करो। यह नाम की गुडविल बेचने जैसा है।

मीडिया में प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अलावा लगभग पिछले दशक से मीडिया की एक नई विधा की शुरुआत हुई है, जिसे 'सोशल मीडिया' कहा जाता है। जब सोशल मीडिया की शुरुआत हुई थी तब उस समय ऐसा लगता था कि प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के एकाधिकार का विकल्प मिल गया है। पर अब स्थिति और भी भयानक हो गई है। अब हर व्यक्ति पत्रकार है और वह जो चाहे वो लिख सकता है। उसे किसी प्रमाण की, तथ्यों की, कोई जरूरत नहीं है। एक प्रकार का उत्तरदायित्वहीनता और अराजकता का दौर

सोशल मीडिया से शुरू हो गया है। कौन-सा समाचार सही है, कौन-सा गलत है, अब तय करना मुश्किल है। फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्यूटर, इंस्टाग्राम, ब्लॉग, वेबसाइट आदि के माध्यमों से सोशल मीडिया जन-जन तक पहुँच गया है। जहाँ एक तरफ इससे सूचनाओं और लेखों का अम्बार लगा है, वहीं दूसरी तरफ बड़े खतरे भी पैदा हो गए हैं। अब सोशल मीडिया की एक सही या झूठी खबर दंगा फसाद करा सकती है। युद्ध करा सकती है और कोई भी भयावह घटना को अंजाम दे सकती है। इसकी प्रामाणिकता को जाँचने का कोई उपाय नहीं है और सरकारें भी इसके प्रति असहाय हैं। निजता और व्यक्तिगत आजादी के नाम पर कुछ भी लिखा जा सकता है। सरकार का हस्तक्षेप भी व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि सरकार का हस्तक्षेप किसी भी दिन अपने हित-अहित के लिए वास्तविक आजादी पर ही नियंत्रण करने का प्रयास कर सकता है। पर इसमें कोई दो राय नहीं है कि ये वाट्सएप यूनिवर्सिटी की खबरें कभी भी कुछ भी कहर ढा सकती हैं। हालाँकि इंटरनेट और सोशल मीडिया का उपयोग भी, शिक्षा, दवा, व्यापार की जागृति आदि के लिए काफी उपयोगी साबित हुआ है।

मीडिया में जो दोष आए हैं, जो गिरावट आई है, उसे दस 'सी' कहा जा सकता है : (1) क्राइम, (2) सिनेमा, (3) सेलिब्रिटी, (4) क्रिकेट, (5) कामर्स, (6) कारपोरेट, (7) करप्शन, (8) कम्युनलाइजेशन, (9) कन्फ्युजन, (10) कस्टम्स (परंपरा, अंधविश्वास आदि)

धर्म के नाम पर लोगों को भाग्यवादी और कमजोर बनाना तथा अंधविश्वास के माध्यम से जनमानस में वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को समाप्त करना और अंधविश्वास बढ़ाना भी आज के मीडिया के धर्म मंत्र बन गए हैं। दरअसल कारपोरेट और कामर्स यानी पूँजीवाद और व्यापार ने सारे मीडिया को हाईजैक कर लिया है। राजनीति और आमजन के लिए मीडिया में मुश्किल से 5 से 10 प्रतिशत स्थान है और वह भी महत्वहीन स्थानों पर। अब तो प्रथम पृष्ठ पर क्रिकेट-क्राइम और सेलिब्रिटी का जिक्र होता है। दूसरे या तीसरे पेजों में धर्म की गंगाएँ बहती हैं। हालाँकि मीडिया में भले ही धर्म और नैतिकता की गंगा बहना शुरू हो गई हो, परंतु सच्चाई तो यह है कि मीडिया की गंगा में अनैतिकता और मूल्यहीनता की बाढ़ आई है। दो पेज कम से कम बाजार के सुपुर्द रहते हैं और एक-दो पेज में बकाया सारे विश्व-देश या शहरों को सिटी संस्करणों में समेट दिया जाता है या फिर स्थानीयता से भरा जाता है। यही स्थिति टीवी चैनल की बहसों की भी है। टीवी डिबेट में आमतौर पर राजधानी हो या बड़े शहरों के स्थाई और व्यावसायिक प्रवक्ता हिस्सेदार होने लगे हैं। जिनका संबंध सत्ताधारी पक्ष से, संभावित सत्तापक्ष से या कारपोरेट से होता है और या फिर वह देर रात्रि में डिबेट आयोजनकर्ताओं की विशेष पाँच सितारा दावतों के मेजबान होते हैं। इनकी रात की दावतें जिन होटलों में होती हैं उनमें कोई सामान्य व्यक्ति खाना नहीं खा सकता, बल्कि आमतौर पर एक व्यक्ति का खाना-पीना ही हजारों रुपयों का होता है।

सन 1990 के बाद से वैश्विक स्तर पर कारपोरेट मीडिया ने एक प्रकार की 'गाइडेड मिसाइल पत्रकारिता' शुरू की है। इसमें सारे मीडिया को कारपोरेट कुछ समय के लिए अपना लक्ष्य पूरा होने तक के लिए खरीद लेता या अनुबंधित कर लेता है। इस आक्रामक मीडिया के प्रचार से देश वक्ती तौर पर गुमराह हो जाता है और कारपोरेट अपने हितों की पूर्ति कर लेता है। दुनिया में इसका प्रयोग 'जैसमिन रिवोल्यूशन' के नाम से मिस्र में और उसके पहले इराक में देखा जा चुका है। भारत में भी 2010 में 'जन लोकपाल बिल' के नाम पर चलाया गया अभियान ऐसे ही तरीके से कारपोरेट को बचाने का अभियान था। 'मिसाइल

जर्नलिज्म' के बाद 'गोयबिल्स जर्नलिज्म' यानी झूठ बोलो-जोर से बोलो और बार-बार बोलो तथा झूठ को सच बनाकर प्रस्तुत करो, शुरू हुआ है। आमजन को इसमें फाँस लेना, यह लक्ष्य होता है।

मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि अभी भी पत्रकारिता में, मीडिया में, कुछ लोग हैं जो अपवाद हैं और निजी रूप में ईमानदारी से काम कर रहे हैं परन्तु उनकी संख्या भी राजनीति के समान उँगलियों में गिनने लायक है। दूसरी तरफ पत्रकारिता और मीडिया पर पूँजी का दबाव और मालिकों की सत्ता इतनी बढ़ गई है कि वास्तविक मीडिया उसके नीचे दबकर रह गया है। न उफ कर सकता है, न बोल सकता है, न मुक्त हो सकता है। सम्पादक नाम की संस्था ही समाप्त हो गई है और सम्पादक बहुत हद तक मालिकों के पी.आर.ओ. जैसे बन गए हैं। उन्हें बड़े-बड़े वेतनों की जंजीर से बाँध लिया है। अब उनका इस वेतन और सुख-सुविधाओं के आकर्षण से मुक्त होना संभव नहीं लग रहा। पत्रकार के हाथ से ही पत्रकार निकाला जाता है, और उसे भूखे मरने पर लाचार कर दिया जाता है। पिछले दो दशकों में सैकड़ों पत्रकार छँटनी के शिकार बना दिए गए। मालिक की मर्जी के खिलाफ जरा भी हलचल करना अपराध मान लिया गया। एक ऐसे भयावह और अघोषित सेंसरशिप के दौर में पत्रकारिता उलझ गई है। श्री राजकिशोर के अनुसार संपादक सबसे निरंकुश तानाशाह बन गए हैं। अखबार बाहर आजादी की बात करते हैं परंतु अखबारों के अंदर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नाममात्र को भी नहीं है। अब विज्ञापन ही खबर बन गए हैं। मीडिया दो धड़ों में बँट गया है, एक मालिक मीडिया, एक मजदूर मीडिया। अभी तक देश में 3 प्रकार के विश्वविद्यालय थे। एक सरकारी, दूसरे निजी, तीसरे निजी में भी जो सामाजिक उद्देश्य के लिए थे, पर अब चौथे प्रकार का विश्वविद्यालय शुरू हुआ है जो 'व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी' है और जहाँ झूठ के प्रचार का नि:शुल्क प्रशिक्षण दिया जाता है। ''मीडिया खुद समस्याएँ पैदा करता है, समस्याओं को महामारी बनाता है और जब महामारी के शिकार होने पर लोग मरने लगते हैं, तब दवा बताता है और उपदेशक बन जाता है।'' अब वास्तविक जन समस्याएँ - रोजगार, किसान, मजदूर, गरीब, विषमता मीडिया के लिए मुद्दे नहीं हैं। बल्कि ऐसी घटनाएँ मुद्दे हैं, जिन्हें दिखाना-बताना उनका कर्तव्य नहीं है। ''मीडिया अब हकीकत से दूर दिखावा, अच्छाई के बजाय बुराई, योग्यता के बजाय अक्षमता और छोटे के बजाय बड़े का सहमना, सहभागी और सहचर हो गया है।'' हालाँकि यह भी सच है कि मीडिया और इंटरनेट ने सूचनाओं का अंबार खड़ा कर दिया है। इसके दोनों पहलू हैं। फेसबुक संवाद का बेहतर माध्यम हो सकता है। पर यह तो उपयोग करने वाले पर भी निर्भर होगा। आप इस पर गाली लिखने को भी आजाद हैं और गाली खाने को भी। यू-ट्यूब, ट्विटर की व्यापकता से, विकल्प तो मिला है, परंतु इसकी गुणवत्ता की परख - इसका सदुपयोग या दुरुपयोग दिमाग के बंद कठघरों को, खोलने या बंद करने या दोनों के इस्तेमाल में हो सकता है। चाकू या छुरे से इन्सान को मारा भी जा सकता है, ऑपरेशन कर बचाया भी जा सकता है। यह तो प्रयोग करने वाले के दिमाग पर, विचार पर, लक्ष्य पर तय होगा। सोशल मीडिया, नशा मुक्ति दूत भी है और नसेड़ी बनाने का औजार भी।

गाँधी के जन्म के 150वें वर्ष में हमारा यह प्रयास होना चाहिए कि वैकल्पिक मीडिया खड़ा हो। पर यह भी तब होगा जब आम जन इसके लिए तैयार होगा। उसे अच्छे समाचार पत्रों-पत्रिकाओं को आर्थिक सहयोग से प्रोत्साहित और जिंदा रखना होगा। जिस दिन मीडिया जन के साथ और जन मीडिया के साथ खड़ा हो जाएगा, व्यवस्था और मीडिया दोनों के विकल्प मिल जाएँगे।

(Email : raghuthakur10@yahoo.in)

अकबर इलाहाबादी के दो शे'रों के छोरों पर खड़ी पत्रकारिता!

■ विजयदत्त श्रीधर

वरिष्ठ पत्रकारों और पत्रकारिता के प्राध्यापकों को जब भी पत्रकारिता पर भाषण देने का मौका मिलता है तब वे अक्सर अकबर इलाहाबादी का यह शे'र दोहराते हैं –

खेंचो न कमानों को,
न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो तो,
अखबार निकालो।

इस बहाने वे अपनी पीठ भी थपथपाते हैं। परन्तु नवोदित पत्रकारों और पत्रकारिता के विद्यार्थियों के लिए ऐसा भ्रम रचने का प्रयास करते हैं मानो पत्रकारिता कोई अलादीन का चिराग है और जिसके घिसने से निकलने वाला जिन्न कोई भी करामात कर सकता है। परंतु आजाद हिन्दुस्तान की पत्रकारिता में जिस तरह के हालात बन रहे हैं वे इसकी गवाही नहीं देते। खासतौर से भारत की आर्थिकी बीसवीं सदी के आखिरी दशक में जैसी भूल भुलैया में उलझी है, उससे उपजने वाले हालात से पत्रकारिता भी दो–चार हो रही है।

अब से करीब तीस साल पहले की एक घटना याद आती है। होशंगाबाद में कलेक्टर कार्यालय की तरफ जाने वाली सड़क पर सरकारी मकान में एक अफसर रहते थे। उनके क्वार्टर के सामने से दस–बारह दिन से एक नि:शक्त बुजुर्ग रोज निकलते थे और शाम को परेशान हाल वापस हो जाते थे। एक दिन अफसर ने उन्हें आवाज दी। अपने घर के अंदर लाए। पानी पिलाया और उनकी परेशानी का कारण पूछा। उन्होंने बताया कि सरकार ने जमीन का पट्टा देने का जो फैसला किया है, वे पट्टा पाने के लिए तहसीलदार और एसडीएम के दफ्तर के चक्कर लगा–लगाकर थक गए हैं। अपनी समस्या का समाधान पाने के लिए कलेक्टर साहब के दफ्तर आ रहे हैं, परंतु अभी तक सुनवाई का मौका नहीं मिला। अफसर ने पूरी बात सुनने और उनका नाम, पता जानने के बाद उन बुजुर्ग से कहा कि अब वे एक सप्ताह बाद आएँ। उन अफसर ने इंदौर के 'नईदुनिया' में पत्र संपादक के नाम एक चिट्ठी भेजी। वो चिट्ठी छपी। असर यह हुआ कि एसडीएम और तहसीलदार ने एक आरआई को भेजकर बुजुर्ग को दफ्तर बुलवाया। वो जब वहाँ पहुँचे तो जमीन का पट्टा उनका इंतजार कर रहा था।

अखबार में छपने वाली छोटी इबारत का भी तब इतना गहरा असर होता था। उपर्युक्त घटना पत्रकारिता के प्रभाव और प्रतिष्ठा की पहचान है। जबकि पिछले कई सालों से कई समाचार पत्रों ने सम्पादक के पत्र वाला कालम ही बन्द कर दिया है। अखबारों के पन्ने रंगारंग हो गए हैं। पन्नों की संख्या बढ़ गई है। दो–तीन पन्ने तो फिल्म–टेलीविजन और खेल वालों के पर्दे के पीछे की गपशप में जाया हो जाते हैं। इससे ज्यादा जगह राजनीति की ऊल–जलूल उलटवासियाँ खा जाती हैं। निश्चित रूप से ये खबरें नहीं होतीं। जब अखबारों का आधे से ज्यादा स्थान ऐसे अगंभीर और सामाजिक सरोकारों से वास्ता न रखने वाली सामग्री से भरा रहेगा तो उनकी प्रतिष्ठा और सार्थकता का ग्राफ ऊँचा कैसे उठ पाएगा?

हमें आंचलिक पत्रकारों के एक प्रशिक्षण

शिविर का वाकया याद आता है। एक अखबार के सम्पादक जी जब बोलते-बोलते जोश में आ गए तब उन्होंने दावा किया - ''हम पत्रकारों की कलम में इतनी ताकत होती है कि पत्थर को देवता बना दें और देवता को पत्थर बना दें।'' उनके एकदम बाद एक युवा जनप्रतिनिधि को बोलना था। लेकिन बोलने के पहले उन्होंने सम्पादक जी को प्रणाम किया और प्रार्थना की, ''आप अपने ऊपर इतनी कृपा करें कि देवता को देवता रहने दें और पत्थर को पत्थर। ये बनाने-बिगाड़ने के चक्कर में पत्रकारिता को न बिगाड़ें।''

अब हम एक और लगातार चली आ रही बाजारू प्रवृत्ति का हवाला देना चाहेंगे। अखबारों में बार-बार ऐसी सूचनाएँ छपती रहती हैं कि फलाँ दिन पुष्य नक्षत्र पड़ने वाला है और इतने बजे से इतने बजे के बीच फलाँ-फलाँ चीज की खरीद शुभ रहने वाली है। ये सूचनाएँ कौन देते हैं ? ये वो भविष्य वक्ता होते हैं जिनका अपना कोई भविष्य नहीं है। लेकिन इस प्रवृत्ति से पता चलता है कि अखबारों ने बाजार चलाने का ठेका ले लिया है। जैसे स्टाक क्लीयर करने के लिए सेल और महासेल लगते हैं, वैसा आए दिन अखबारों के पन्नों में भी नजर आता रहता है।

बाजार समाज की आवश्यक सच्चाई है। बाजार पहले भी थे, आज भी हैं, और कल भी रहेंगे। परंतु सहायक की भूमिका में ही बाजार अच्छे होते हैं। दुर्भाग्य से बाजार अब स्वामी की तरह समाज पर सवार हो रहे हैं, यह हमारे समय का एक विकृत लक्षण है।

जिन अकबर इलाहाबादी के शे'र के साथ यह बात शुरू हुई, उन्हीं का कालान्तर में लिखा गया दूसरा शे'र भी मौजूँ हैं -

बूट डासन ने बनाया,
मैंने एक मजमूँ लिखा।
मेरा मजमूँ चल न पाया,
उनका जूता चल गया।

इन दिनों जब हम अखबारों के प्रबंधकों के श्रीमुख से सुनते हैं कि अखबार भी एक प्रोडक्ट है और उसे साबुन-शैम्पू की तरह ही बेचना पड़ता है। तब शायर के उपर्युक्त दूसरे शे'र की टीस चुभती है। न तो हम बाजार के खिलाफ हैं। न ही हम प्रेस में लगने वाली पूँजी के महत्व को कम आँकते हैं। न ही हमें विज्ञापन की जरूरत से इनकार है। परंतु यह जरूर कहना चाहेंगे कि सामाजिक सरोकारों से विहीन पत्रकारिता का कोई अर्थ नहीं होता। आज हमारे सामने विश्वसनीयता का संकट गहराया हुआ है। हम समझ सकते हैं कि पत्रकारिता का प्रभाव तो बढ़ा है, परंतु प्रतिष्ठा में गिरावट आई है। यही हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौती है।

हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि कई अखबारों में, खासतौर से छोटे-छोटे स्थानों से आती खबरों से, अच्छी पत्रकारिता के नमूने सामने आ रहे हैं। वे उदाहरण बन रहे हैं और परिणाममूलक भी सिद्ध हो रहे हैं। परंतु यह अपवाद हैं। इनका अनुपात और प्रयोग-प्रवाह बढ़ेगा तो पत्रकारिता के भी अच्छे दिन आएँगे ! ❑❑

सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की वेबसाइट में सप्रे संग्रहालय में संग्रहीत प्रचुर संदर्भ सामग्री की सूची, संग्रहालय के प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय, संग्रहालय आने वाले विद्वानों की सम्मतियाँ आदि विवरण सम्मिलित किए गए हैं। इस विपुल संदर्भ सामग्री का लाभ उठाने के इच्छुक शोधकर्त्ता, पत्रकार, लेखक एवं विद्यार्थी वांछित सामग्री की जानकारी सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट से प्राप्त कर सकते हैं।

Website : www.sapresangrahalaya.com
Email : sapresangrahalaya@yahoo.com

आइंस्टीन और महात्मा गांधी

विश्व की दो महान विभूतियाँ एक समय काल में जन्मी, जो परस्पर एक-दूसरे की पूरक रहीं। गाँधी के खिलाफ सबसे ज्यादा टिप्पणियाँ अपने देश में ही की जाती हैं जबकि महान आइंस्टीन गाँधी को एक ऐसे प्रकाशपुंज के रूप में देखते थे जिसके आलोक में ही विश्व की मानवता सुरक्षित रह सकती है।

आइंस्टीन को जब-जब लगा कि विज्ञान और एकतरफा तर्कवाद मानव जाति के लिए संकट बन सकता है, तब-तब उनके सामने गांधी का जीवन एक आदर्श के रूप में सामने आता रहा।

दुनिया के महानतम वैज्ञानिकों में से एक माने जाने वाले अल्बर्ट आइंस्टीन एक वैज्ञानिक के रूप में अपना आदर्श किसे मानते थे? शीर्षक पढ़कर हम जल्दबाजी में महात्मा गांधी का नाम न ले लें! क्योंकि शुरुआती दौर में एक वैज्ञानिक के रूप में उन्होंने दो महान वैज्ञानिकों को ही अपना आदर्श माना था और ये दो वैज्ञानिक थे - आइजक न्यूटन और जेम्स मैक्सवेल। उनके कमरे में इन्हीं दो वैज्ञानिकों की पोर्ट्रेट लगी रहती थीं।

लेकिन अपने सामने दुनिया में तरह-तरह की भयानक हिंसक त्रासदी देखने के बाद आइंस्टीन ने अपने घर में लगे इन दोनों पोर्ट्रेट के स्थान पर दो नई तस्वीरें टाँग दीं। इनमें एक तस्वीर थी महान मानवतावादी अल्बर्ट श्वाइटजर की और दूसरी थी महात्मा गांधी की। इसे स्पष्ट करते हुए आइंस्टीन ने उस समय कहा था - ''समय आ गया है कि हम सफलता की तस्वीर की जगह सेवा की तस्वीर लगा दें।'' लेकिन महात्मा गांधी के साथ-साथ अल्बर्ट श्वाइटजर की तस्वीर ही क्यों? इस पर आइंस्टीन ने कहा था - ''पश्चिम में अकेले अल्बर्ट श्वाइटजर ही ऐसे हैं जिनका इस पीढ़ी पर उस तरह का नैतिक प्रभाव पड़ा है, जिसकी तुलना गांधी से की जा सकती हो। गांधी की ही तरह श्वाइटजर का भी इस हद तक इतना ज्यादा प्रभाव इसलिए पड़ा है, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन से इसका उदाहरण पेश किया।''

हम आगे बढ़ें इससे पहले यह भी देखते चलें कि आइंस्टीन के आदर्श श्वाइटजर स्वयं महात्मा गांधी के बारे में क्या सोचते थे। श्वाइटजर ने भारत पर केंद्रित अपनी पुस्तक 'इंडियन थॉट एंड इट्स डेवलपमेंट' में लिखा - ''गांधी का जीवन-दर्शन अपने आप में एक संसार है।'' उन्होंने लिखा - ''गांधी ने बुद्ध की शुरू की हुई यात्रा को ही जारी रखा है। बुद्ध के संदेश में प्रेम की भावना दुनिया में अलग तरह की आध्यात्मिक परिस्थितियाँ पैदा करने का लक्ष्य अपने सामने रखती है। लेकिन गांधी तक आते-आते यह प्रेम केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि समस्त सांसारिक परिस्थितियों को बदल डालने का कार्य अपने हाथ में ले लेता है।''

सफलता के स्थान पर सेवा को अपना आदर्श घोषित कर देने वाले आइंस्टीन के जीवन-दर्शन में यह बड़ा बदलाव दिखाता है कि मनुष्य में ज्ञान का विकास रुकता नहीं है। जीवन के अनुभव, सामाजिक वातावरण और वैश्विक परिस्थितियाँ मनुष्य के विचार को और व्यक्तित्व को बदलती रहती हैं। फिर चाहे वह आइंस्टीन हों या महात्मा गांधी। ऐतिहासिक शख्सियतों के अध्ययन में हमें इस बात का लगातार ध्यान रखना होता है और यह बात उन व्यक्तित्वों पर खासतौर से लागू होती है, जिनका जीवन चिंतनशील और प्रयोगशील होता है। पदार्थ विज्ञान की गुत्थियों को सुलझाते हुए भी आइंस्टीन धर्म, अध्यात्म, प्रकृति और कल्पनाशीलता जैसे विषयों पर लगातार चिंतन

करते रहे। जब-जब भी उन्हें लगा कि विज्ञान और एकांगी तर्कवाद अपने अहंकार पर सवार होकर समूची मानवजाति के लिए ही संकट बन सकता है, तब-तब उन्होंने अहिंसा, विनम्रता, सेवा और त्याग की बात भी की। ऐसे अवसरों पर उनके सामने बार-बार महात्मा गांधी का जीवन एक आदर्श उदाहरण के रूप में सामने आता रहा।

आइंस्टीन महात्मा गांधी से उम्र में केवल 10 साल छोटे थे। वे दोनों व्यक्तिगत रूप से कभी एक-दूसरे से मिले नहीं, लेकिन एक बार आत्मीयतापूर्ण पत्राचार अवश्य हुआ। यह चिट्ठी आइंस्टीन ने 27 सितंबर, 1931 को वेल्लालोर अन्नास्वामी सुंदरम् के हाथों गांधीजी को भेजी थी। इस चिट्ठी में आइंस्टीन ने लिखा – ''अपने कारनामों से आपने बता दिया है कि हम अपने आदर्शों को हिंसा का सहारा लिए बिना भी हासिल कर सकते हैं। हम हिंसावाद के समर्थकों को भी अहिंसक उपायों से जीत सकते हैं। आपकी मिसाल से मानव समाज को प्रेरणा मिलेगी और अंतरराष्ट्रीय सहकार और सहायता से हिंसा पर आधारित झगड़ों का अंत करने और विश्वशांति को बनाए रखने में सहायता मिलेगी। भक्ति और आदर के इस उल्लेख के साथ मैं आशा करता हूँ कि मैं एक दिन आपसे आमने-सामने मिल सकूँगा।'' तब महात्मा गांधी के असहयोग, सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह जैसे अहिंसक तरीकों के बारे में यूरोप और अमेरिका के अखबारों में लगातार लिखा जा रहा था और आइंस्टीन तक भी ये विचार पहुँचे होंगे।

गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने गए गांधीजी ने 18 अक्टूबर, 1931 को लंदन से ही इस पत्र का जवाब आइंस्टीन को लिखा। अपने संक्षिप्त जवाब में उन्होंने लिखा – ''प्रिय मित्र, इससे मुझे बहुत संतोष मिलता है कि मैं जो कार्य कर रहा हूँ, उसका आप समर्थन करते हैं। सचमुच मेरी भी बड़ी इच्छा है कि हम दोनों की मुलाकात होती और वह भी भारत-स्थित मेरे आश्रम में।''

इसी बीच आइंस्टीन ने दुनिया की सेनाओं से अपील की कि वे युद्ध में शामिल होने से इनकार कर दें। इससे पहले लियो टॉल्सटॉय भी लोगों को सेना में शामिल होने से इनकार करने का आह्वान कर चुके थे। लेकिन आइंस्टीन की इस अपील से यूरोप के कुछ शांतिवादी भी विचलित हुए थे और उन्हीं में से एक ब्रिटिश शांतिवादी रुनहम ब्राउन ने चार फरवरी, 1931 को महात्मा गांधी को चिट्ठी लिखी। ब्राउन यह जानना चाहते थे कि आइंस्टीन ने सैनिकों से युद्ध में शामिल न होने की जो अपील की है, उस पर गांधी के क्या विचार हैं। यह संभवत: पहला अवसर था, जब गांधी और आइंस्टीन एक-दूसरे के विचारों पर सार्वजनिक रूप से चर्चा कर रहे थे।

छह मई, 1931 को ब्राउन के पत्र का जवाब देते हुए महात्मा गांधी ने लिखा – ''मेरा खयाल है कि प्रोफेसर आइंस्टीन का सुझाव सर्वथा तर्कसंगत है और यदि युद्ध में विश्वास न करने वालों के लिए युद्ध संबंधी सेवाओं में शामिल होने से इनकार करना उचित माना जाता है, तो इससे अनिवार्य निष्कर्ष यही निकलता है कि युद्ध का प्रतिरोध करने वालों को कम से कम उनके साथ सहानुभूति तो रखनी ही चाहिए। भले ही उनमें अपने अंत:करण की खातिर कष्ट सहन करने वाले लोगों के उदाहरण पर स्वयं अमल कर सकने जितना साहस न हो।''

इसके सात महीने बाद लंदन से लौटते हुए जब गांधी स्विटजरलैंड के शहर लोजान पहुँचे, तो वहाँ 8 दिसंबर, 1931 को उनकी पहली सभा में ही लोगों ने उनसे कई सवाल किए। इस सभा में उनसे फिर से किसी ने सीधे-सीधे आइंस्टीन के हवाले से वही सवाल किया – ''आइंस्टीन ने आह्वान किया है कि सैनिकों को युद्ध में भाग लेने से इनकार कर देना चाहिए। उनके इस आह्वान पर आपके क्या विचार हैं?''

इस बार गांधीजी का जवाब दिलचस्प तो था

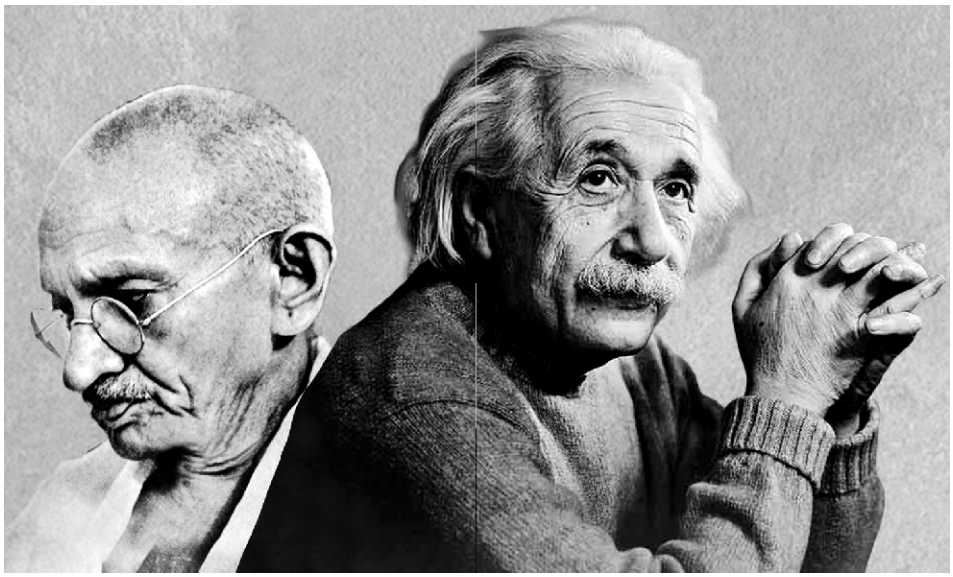

दो अक्टूबर, 1944 को महात्मा गांधी के 75वें जन्मदिवस पर आइंस्टीन ने अपने संदेश में लिखा – ''आने वाली नस्लें शायद मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि हाड़-माँस से बना हुआ कोई ऐसा व्यक्ति भी धरती पर चलता-फिरता था।'' यह वाक्य गांधी को जानने-समझने वाली कई पीढ़ियों के लिए एक सूत्रवाक्य ही बन गया और आज भी इसे विभिन्न अवसरों पर उद्धृत किया जाता है।

ही, लेकिन इस जवाब के माध्यम से वे आइंस्टीन को इस विषय पर थोड़ा गहराई से सोचने के लिए प्रेरित भी कर रहे थे। उन्होंने कहा – ''मेरा उत्तर केवल एक ही हो सकता है। अगर यूरोप इस तरीके को उत्साहपूर्वक अपना सके तो मैं यही कहूँगा कि आइंस्टीन ने मेरा तरीका चुरा लिया है। लेकिन यदि आप यह चाहते हो कि मैं इस तरीके को विस्तार से समझाऊँ तो मैं तनिक गहराई में उतरकर इसकी चर्चा करूँगा।''

''... सैनिक सेवा का अवसर आने पर जब कोई व्यक्ति इससे इनकार करता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि वह ऐसे समय में बुराई का विरोध कर रहा है, जब विरोध करने का अवसर बिल्कुल बीत चुका है। रोग जरा गहरा है। मेरा कहना यह है कि जिनके नाम सैनिक सेवा करने वालों की सूची में नहीं है, वे भी इस अपराध में उतना ही हाथ बँटा रहे हैं। इसलिए जो भी स्त्री या पुरुष (कर इत्यादि देकर) इस ढंग से गठित राज्य की सहायता करता है, वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उस पाप में हिस्सा बँटाता है।''

''...राज्य को सहारा देने वाली संपूर्ण पद्धति से असहयोग करने की तुलना में सैनिक सेवा करने से इनकार करना बहुत ही सतही और नकली चीज है। लेकिन जब आपकी सैनिक सेवा करने की बारी आती है वह इतनी तेजी और इतने प्रभावकारी ढंग से आती है कि इनकार करने पर न केवल आपको जेल भेज दिए जाने का खतरा रहता है, बल्कि यह भय भी रहता है कि राज्य आपको कहीं का न छोड़े। टॉल्सटॉय यही कहते थे। ...जो बात आइंस्टीन ने कही है, उसको आजमाने का प्रसंग

साल में कभी एकाध बार ही आएगा और सो भी कुछ ही लोगों के सामने। लेकिन आपका पहला कर्तव्य राज्य से असहयोग करना है।''

इस दो-टूक लेकिन प्रबोधनकारी जवाब को आइंस्टीन ने अवश्य ही पढ़ा होगा और इसने उन्हें बाध्य किया होगा कि अहिंसा और असहयोग जैसे गहरे विषयों को केवल तात्कालिक और ऊपरी तरीकों से समझना ही पर्याप्त नहीं है। इसके बाद तो आइंस्टीन आजीवन ही गांधीजी के जीवन और विचारों के प्रति लगातार अपनी श्रद्धा व्यक्त करते रहे।

गांधी जी की मृत्यु पर लिखे संदेश में आइंस्टीन ने कहा था, ''लोगों की निष्ठा राजनीतिक धोखेबाजी के धूर्ततापूर्ण खेल से नहीं जीती जा सकती, बल्कि वह नैतिक रूप से उत्कृष्ट जीवन का जीवंत उदाहरण बनकर भी हासिल की जा सकती है।''

नौ दिसंबर, 1931 को स्विटजरलैंड के ही विलेन्यूव शहर में रोमां रोलां ने महात्मा गांधी का साक्षात्कार किया और अपने एक सवाल में रोमां रोलां ने थोड़ा मजाकिया अंदाज में आइंस्टीन का जिक्र करते हुए प्रथम विश्व-युद्धोत्तरकालीन जर्मनी के युवकों के बारे में कहा, ''जर्मनी का युवा-वर्ग युद्ध से पहले की अपेक्षा अब बिल्कुल बदल गया है. ...नया युवक 'सापेक्षता' की स्थिति में रह रहा है -- इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि वे आइंस्टीन के देश के हैं।'' जवाब में गांधीजी ने इस पर कोई सीधी टिप्पणी नहीं की। केवल इतना कहा कि ''भारतीय युवकों में चाहे बहुत बड़े बलिदान की क्षमता न हो, लेकिन वे अप्रतिरोध के प्रभाव में आ रहे हैं।''

दो अक्टूबर, 1944 को महात्मा गांधी के 75वें जन्मदिवस पर आइंस्टीन ने अपने संदेश में लिखा - ''आने वाली नस्लें शायद मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि हाड़-माँस से बना हुआ कोई ऐसा व्यक्ति भी धरती पर चलता-फिरता था।'' यह वाक्य गांधी को जानने-समझने वाली कई पीढ़ियों के लिए एक सूत्रवाक्य ही बन गया और आज भी इसे विभिन्न अवसरों पर उद्धृत किया जाता है।

इसके बाद जब यहूदियों के लिए अलग से इजराइल नाम का देश बनाने के प्रयास शुरू हुए, तो 21 जुलाई, 1946 को यहूदी और फिलिस्तीन के संबंध में 'हरिजन' में लिखे अपने लेख में महात्मा गांधी ने एक बार फिर से आइंस्टीन का जिक्र किया। उन्होंने यहूदियों से अपील की थी कि वे अमेरिकी पैसे और अँगरेजी फौज के बल पर फिलिस्तीन पर जबरन कब्जा करने की कोशिश न करें। उन्होंने यूरोप और अमेरिका के ईसाई समाज से कहा कि यहूदियों को विश्व-नागरिक और अतिथि के रूप में स्वीकार न करके उन्होंने उनके प्रति एक पूर्वाग्रहपूर्ण रवैया अपना रखा है। उन्होंने लिखा - ''कोई एक यहूदी कोई गलती करता है तो पूरी यहूदी दुनिया उसके लिए दोषी मान ली जाती है। लेकिन अगर आइंस्टीन जैसा यहूदी कोई बड़ी खोज करता है या कोई अन्य यहूदी कोई अद्वितीय संगीत रचता है, तो उसका श्रेय उस आविष्कारकर्ता या रचयिता को जाता है, उस समाज को नहीं जिसके वे सदस्य हैं।''

30 जनवरी, 1948 को जब गांधीजी की हत्या हुई और पूरी दुनिया में शोक की लहर फैल गई, तो आइंस्टीन भी विचलित हुए बिना नहीं रहे थे। 11 फरवरी, 1948 को वाशिंगटन में आयोजित एक स्मृति सभा को भेजे अपने संदेश में आइंस्टीन ने कहा, ''वे सभी लोग जो मानव जाति के बेहतर भविष्य के लिए चिंतित हैं, वे गांधी की दुखद मृत्यु से अवश्य ही बहुत अधिक विचलित हुए होंगे। अपने ही सिद्धांत यानी अहिंसा के सिद्धांत का शिकार होकर उनकी मृत्यु हुई। उनकी मृत्यु इसलिए हुई कि देश में फैली अव्यवस्था और अशांति के दौर में भी उन्होंने किसी भी तरह की निजी हथियारबंद सुरक्षा लेने से इनकार कर दिया। यह उनका दृढ़ विश्वास था कि बल का प्रयोग

अपने आप में एक बुराई है और जो लोग पूर्ण शांति के लिए प्रयास करते हैं, उन्हें इसका त्याग करना ही चाहिए। अपनी पूरी जिंदगी उन्होंने अपने इसी विश्वास को समर्पित कर दी और अपने दिल और मन में इसी विश्वास को धारण कर उन्होंने एक महान राष्ट्र को उसकी मुक्ति के मुकाम तक पहुँचाया। उन्होंने करके दिखाया कि लोगों की निष्ठा सिर्फ राजनीतिक धोखाधड़ी और धोखेबाजी के धूर्ततापूर्ण खेल से नहीं जीती जा सकती है, बल्कि वह नैतिक रूप से उत्कृष्ट जीवन का जीवंत उदाहरण बनकर भी हासिल की जा सकती है।''

गांधी जी के बारे में आइंस्टीन का कहना था, ''उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में भी मानवीय संबंधों की उस उच्चस्तरीय संकल्पना का प्रतिनिधित्व किया जिसे हासिल करने की कामना हमें अपनी पूरी शक्ति लगाकर अवश्य ही करनी चाहिए।''

उन्होंने आगे लिखा, ''पूरी दुनिया में गांधी के प्रति जो श्रद्धा रखी गई, वह अधिकतर हमारे अवचेतन में दबी इसी स्वीकारोक्ति पर आधारित थी कि नैतिक पतन के हमारे युग में वे अकेले ऐसे स्टेट्समैन थे, जिन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में भी मानवीय संबंधों की उस उच्चस्तरीय संकल्पना का प्रतिनिधित्व किया जिसे हासिल करने की कामना हमें अपनी पूरी शक्ति लगाकर अवश्य ही करनी चाहिए। हमें यह कठिन सबक सीखना ही चाहिए कि मानव जाति का भविष्य सहनीय केवल तभी होगा, जब अन्य सभी मामलों की तरह ही वैश्विक मामलों में भी हमारा कार्य न्याय और कानून पर आधारित होगा, न कि ताकत के खुले आतंक पर, जैसा कि अभी तक सचमुच रहा है।''

उसी साल के अंत में दो नवंबर, 1948 को 'इंडियन पीस कांग्रेस' को भेजे गए अपने संदेश में आइंस्टीन ने इन शब्दों में महात्मा गांधी को याद किया था, ''... क्रूर सैन्यशक्ति को दबाने के लिए उसी तरह की क्रूर सैन्यशक्ति का कितने भी लंबे समय तक इस्तेमाल करते रहने से कोई सफलता नहीं मिल सकती। बल्कि सफलता केवल तभी मिल सकती है, जब उस क्रूर बल का उपयोग करने वाले लोगों के साथ असहयोग किया जाए। गांधी ने पहचान लिया था कि जिस दुष्चक्र में दुनिया के राष्ट्र फँस गए हैं, उससे बाहर निकलने का रास्ता केवल यही है। आइए, जो कुछ भी हमारे वश में है हम वह सब कुछ करें, इससे पहले कि बहुत देर हो जाए। दुनिया के सभी लोग गांधी के उपदेशों को अपनी बुनियादी नीति के रूप में स्वीकार करें।''

इसके बाद भी कई अवसरों पर उन्होंने गांधी का उल्लेख किया। एक बार उन्होंने कहा था, ''ऐसी सभी परिस्थितियों में, जहाँ समस्याओं का तर्कसंगत समाधान संभव है, मैं ईमानदारी के साथ समन्वय पसंद करता हूँ और यदि मौजूदा परिस्थितियों में ऐसा करना संभव न हो, तो अन्याय के विरुद्ध गांधी के शांतिपूर्ण प्रतिरोध का तरीका पसंद करता हूँ।''

यह भी मान सकते हैं कि आइंस्टीन के धर्म-विषयक विचारों पर गांधी के जीवन का प्रभाव बहुत अधिक रहा होगा। तभी उन्होंने अपने प्रसिद्ध लेख 'साइंस, फिलॉसॉफी एंड रिलीजन' में शुद्ध धार्मिक व्यक्ति की पहचान ऐसे व्यक्ति के रूप में की थी जो निजी आशाओं और आकांक्षाओं के बन्धन से मुक्त होकर चलने का प्रयास करता है। ''जो प्रकृति में निहित तार्किकता को विनम्रता से पहचानते हुए चलता है। जिसने स्वयं को स्वार्थों से मुक्त कर लिया है और ऐसे विचारों तथा भावनाओं में लीन रहता है, जो निज से परे होती हैं।'' उन्होंने उदाहरण के तौर पर बुद्ध और स्पिनोजा का नाम भी लिया था। लेकिन धार्मिक व्यक्ति का ऐसा चित्रण करते हुए स्वार्थ-त्याग और सेवा का जीवंत उदाहरण बन चुके गांधी उनके अवचेतन में कहीं न कहीं मौजूद तो थे ही। गांधी और श्वाइटजर की तस्वीर अपने मेज के ठीक सामने लगाते समय भी उन्होंने यही तो कहा था।

(साभार : satyagrah.scroll.in)

बांग्लादेश मुक्ति संग्राम और अमेरिकी मीडिया

■ नंदिनी सिन्हा

सन 1947 में जब भारत और पाकिस्तान आजाद हुए तब पूर्वी पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल) क्योंकि मुस्लिम बहुल क्षेत्र था, इसलिए उसे पाकिस्तान में शामिल किया गया। जिन्ना के द्वि-राष्ट्र सिद्धांत (टू नेशन थ्योरी) के अनुसार हिन्दू और मुस्लिम दो अलग-अलग मुल्क बन गए। उस सिद्धांत को अँगरेजों ने भी मान लिया। संसाधनों के अनुसार पूर्वी पाकिस्तान ज्यादा समृद्ध था लेकिन राजनीतिक रूप से पश्चिमी पाकिस्तान ज्यादा हावी था। फिर चाहे पश्चिमी पाकिस्तान में पैदा होने वाला कपास हो या पूर्वी पाकिस्तान में पैदा होने वाला जूट, उनके निर्यात से होने वाला राजस्व मुख्य रूप से पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा ही नियंत्रित होता था। एक ही देश के दो भागों में सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं के कारण और सत्ता के ऊपर नियंत्रण करने की प्रवृत्ति ने असंतोष को जन्म दिया। उसने मुक्ति संग्राम को जन्म दिया और अंत में 1971 में वही बांग्लादेश के गठन का कारण बना। कई सालों के संघर्ष और पाकिस्तान की सेना के अत्याचार और बांग्लाभाषियों के दमन के विरोध में पूर्वी पाकिस्तान के लोग अलग मुल्क की माँग करने लगे। 25 मार्च 1971 की मध्यरात्रि से मुक्ति संग्राम की शुरुआत तभी हो गई थी जब पाकिस्तानी सेना द्वारा बंगाली नागरिकों, छात्रों, बुद्धिजीवियों और सशस्त्रकर्मियों के खिलाफ 'ऑपरेशन सर्चलाइट' नामक कार्रवाई प्रारंभ की गई। वह उन लोगों के खिलाफ एक ऑपरेशन था

जो यह माँग कर रहे थे कि फौजी शासन पाकिस्तान में 1970 में हुए पहले लोकतांत्रिक चुनाव में आवामी लीग की जीत को स्वीकार करे। आवामी लीग के अध्यक्ष बंगबंधु शेख मुजीबुर रहमान ने ऑपरेशन शुरू होने और अपनी गिरफ्तारी से ठीक पहले बांग्लादेश की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी। सन 1971 में पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच हुआ युद्ध केवल दोनों प्रान्तों के बीच ही नहीं, बल्कि उसमें कई देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल थे। युद्ध में अमेरिका ने काफी जटिल और नकारात्मक भूमिका निभाई। जैसे-जैसे संकट व्यापक होता गया, अमेरिकी प्रतिक्रिया कई विवादास्पद चरणों से गुजरती गई। पहले अमेरिका अपने को गैर भागीदारी दिखाते हुए युद्ध से जुड़े मसले में खुलकर सामने नहीं आया।

सन 1971 में मार्च से लेकर जुलाई महीने तक अमेरिका ने खबरों के माध्यम से पूर्वी पाकिस्तान की समस्या को पाकिस्तान का आन्तरिक मामला ही बताया। कभी शांति की अपील करना तो कभी तटस्थ दिखाकर अमेरिका ने अपनी भूमिका निभाई। ऐसा अमेरिका से छपने वाले अखबारों में साफ दिखता है।

न्यूयार्क से प्रकाशित टाइम पत्रिका के 15 मार्च 1971 के अंक में पाकिस्तान जिन्नाज फेडिंग ड्रीम (Pakistan Jinnah's Fading Dream) शीर्षक से रिपोर्ट प्रकाशित की जिसमें लिखा था, ''1947 के विभाजन से लेकर जो सांप्रदायिक संघर्ष शुरू हुआ था, वह आज भी जारी है। पिछले सप्ताह उसी पुराने संघर्ष को एक बार फिर से दुनिया के पाँचवें सबसे अधिक 130 मिलियन की जनसंख्या वाले देश पाकिस्तान में होते देखा गया। वह देश दो भागों में बँटा हुआ है। देश का एक हिस्सा पश्चिमी पाकिस्तान है जहाँ गेहूँ की पैदावार ज्यादा है और वहाँ के लोग लम्बे और गोरे रंग के हैं। वहीं दूसरा हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान का है जहाँ चावल की पैदावार ज्यादा है और वहाँ के लोग छोटे कद के हैं। दो अलग-अलग भौगोलिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में बँटे इन दो हिस्सों में संधि विच्छेद या गृहयुद्ध की शुरुआत हो चुकी है।''[1]

टाइम पत्रिका ने यह साफ लिखा था कि आसन्न विभाजन के पीछे शेख मुजीबुर रहमान हैं जो अधिक आबादी और गरीबी से जूझ रहे पूर्वी क्षेत्र के निर्विरोध नेता हैं। टाइम पत्रिका ने शेख मुजीबुर रहमान के उस बयान को प्रमुखता से छापा जिसे उन्होंने उसके संवाददाता डैन कोगिन को ढाका में दिया था। उसमें उन्होंने कहा था कि पाकिस्तान जो अब दिख रहा है, वह खत्म हो गया है। अब कोई भी समझौता होने की उम्मीद नहीं बची है। शेख मुजीबुर रहमान ने अपने कथन में यह आग्रह किया था कि पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान दोनों अलग-अलग संविधान को अपनाते हैं। इस वजह से उनके अनुयायी केंद्र सरकार जो कि पश्चिमी पाकिस्तान में स्थित है, को टैक्स देने के लिए राजी नहीं हैं।[2] टाइम पत्रिका ने लिखा था कि अगर मुजीब ऐसी घोषणा का एलान करते हैं तो युद्ध होने के पूरे आसार हैं। अमेरिकी प्रेस में पश्चिमी सेना की ताकत का भी बखान किया गया। कई बार उनकी संख्या का जिक्र कर पूर्वी क्षेत्र के विद्रोह को एक तरह की चेतावनी दी गई। पश्चिमी पाकिस्तान के पास लगभग 60,000 सेना की टुकड़ियाँ हैं, इस तरह के आँकड़ों का इस्तेमाल खबरों में किया जाने लगा।

पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान के बीच हो रहे मतभेद और आगे चलकर युद्ध में तबदील हुई स्थिति का फायदा हमेशा से अमेरिका ने उठाया। वैसी स्थिति में अमेरिका ने एक बार फिर से इतिहास दोहराने की कोशिश की। भारत और अविभाजित पाकिस्तान के बीच मतभेद पैदा कर सामाजिक, राजनीतिक और अन्य स्तर पर अलगाव और द्वेष की मंशा पैदा करने में अमेरिका ने जरा भी हिचक नहीं दिखाई। ठीक उसी तरह अमेरिका ने पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान के बीच भी अपनी 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को अपनाया। इसमें एक हद तक उसे सफलता भी हासिल हुई। इसके लिए वहाँ के मीडिया का रुझान भी वैसा ही रहा।

अमेरिका ने युद्ध से जुड़े हर मसले में अपनी टाँग अड़ाने की कोशिश की। जब पूर्वी पाकिस्तान से बड़ी संख्या में शरणार्थी भारत की ओर पलायन कर रहे थे, तब वह भारत के लिए परेशानी का सबब तो था लेकिन भारत अपनी जिम्मेदारी से पीछे नहीं हटा और उन्हें शरण दी। हालात को देखते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने अमेरिका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन को इस बारे में जानकारी दी और मदद की गुहार लगाई। अमेरिका को यकीन हो गया था कि भारत, पाकिस्तान के खिलाफ जंग छेड़ने को तैयार है। इसलिए वहाँ के

राष्ट्रपति निक्सन ने भारत को किसी भी तरह की मदद देने से इनकार कर दिया। वहाँ की सरकार की नीति और फैसले का प्रभाव वहाँ के अखबारों में भी देखने को मिला जहाँ भारत में शरणार्थियों की खबरें और उनकी परेशानी गौण रहीं।

दरअसल अमेरिका, पाकिस्तान के साथ सेण्टो और सिएटो संधि के तहत जुड़ा हुआ था। साथ ही अमेरिका को इस बात का भी भय था कि अगर युद्ध हुआ और भारत की जीत हुई तो उसके समर्थन से एशिया में सोवियत संघ का प्रभाव और बढ़ जाएगा। उस युद्ध काल में भारत को रूस का समर्थन मिला, वहीं पाकिस्तान के साथ अमेरिका, चीन, ब्रिटेन थे। ऐसे में अमेरिका की पत्र-पत्रिकाओं में पाकिस्तान समर्थक खबरें प्रमुखता से रहीं। कई बार अखबारों में ऐसी खबरों का प्रकाशन भी होता रहा जो गैर तरफदार थे। उनमें ज्यादातर स्थितियों में युद्ध की सामान्य खबरों और घटनाक्रम से अवगत कराया गया। शुरुआत से गृहयुद्ध की संभावनाओं की खबरें आती रहीं, लेकिन आगे चलकर कभी पश्चिमी सेना की ताकत को उसकी जीत की संभावनाओं और पक्ष में प्रस्तुत किया गया तो कभी आवामी लीग के विरोध को बड़ी चुनौती के रूप में दिखाया गया।

युद्ध के दौरान भारी खर्च के वहन और अंतरराष्ट्रीय आलोचना के बावजूद पाकिस्तान के राष्ट्रपति याह्या खान अपनी जीत को लेकर आश्वस्त थे। इसके लिए हर संभव प्रयास और दवाब के हथकंडे भी अपनाए जा रहे थे। लेकिन पूर्वी पाकिस्तान को भारत से मिलने वाला समर्थन सिर्फ पश्चिमी पाकिस्तान ही नहीं, बल्कि अमेरिका और चीन के लिए भी गंभीर मुद्दा बन रहा था। अमेरिकी पत्र-पत्रिकाओं में भारत द्वारा पूर्वी पाकिस्तान को मिल रही मदद को नक्सलवाद समर्थन बताया जाता रहा।

टाइम पत्रिका ने 26 अप्रैल, 1971 के अंक में नक्सलाइट सिम्पेथायीजर के शीर्षक से रिपोर्ट लिखी थी जिसमें अमेरिका और अन्य देशों द्वारा युद्ध को लेकर अब तक तटस्थता बनाए रखने की बात का जिक्र किया गया। वाशिंगटन ने घोषणा की कि 25 मार्च से शुरू हुए युद्ध में उनके द्वारा पाकिस्तान को किसी भी तरह के हथियार देने की मदद नहीं की गई है। वहीं चीन ने पाकिस्तान सरकार को खुलकर समर्थन देना शुरू कर दिया है। साथ ही भारत, पाकिस्तान के विद्रोहियों को चुपचाप समर्थन देते हुए सहानुभूति कर रहा है। भारत के पश्चिम बंगाल की निकटता पूर्वी पाकिस्तान के लोगों से रही है। पश्चिम बंगाल में पूर्वी पाकिस्तान के समर्थन में वहाँ के शहरी आतंकवादी जो कि माओवादी नक्सली हैं, की संख्या सबसे ज्यादा है। विद्रोहियों को यहीं से घरों में बनी बंदूकों और बमों से सहायता पहुँचाई जा रही है।[3] टाइम पत्रिका ने 20 दिसंबर 1971 के अंक की आवरण कथा का शीर्षक भी नकारात्मक दिया था - ब्लडी बर्थ आफ बांग्लादेश।[4]

अमेरिकी पत्रिका 'न्यूज वीक' ने 5 अप्रैल 1971 के अंक में पाकिस्तान प्लंग्स इनटू सिविल वार (Pakistan plunges into civil war) शीर्षक से रिपोर्ट लिखी। उसमें पाकिस्तान में गृह युद्ध की बात को स्पष्ट किया गया। उस रिपोर्ट में पाकिस्तान के राष्ट्रपति मोहम्मद याह्या खान और शेख मुजीबुर रहमान के वक्तव्य को सबसे ऊपर छापा गया। याह्या खान का वक्तव्य शेख मुजीबुर रहमान के लिए था, जिसमें उन्होंने कहा कि वह इंसान और उनकी पार्टी पाकिस्तान के लिए दुश्मन है। देश के लिए ऐसे गुनाह करने की सजा उन्हें जरूर मिलेगी। सत्ता के भूखे और असंगत लोगों को पाकिस्तान को नष्ट करने और 120 मिलियन लोगों के भविष्य से खेलने नहीं दिया जाएगा। वहीं शेख मुजीबुर रहमान के वक्तव्य में कहा गया कि आपके पास जो हथियार हैं, उसे लेकर अपने-अपने घरों से बाहर निकलें। किसी भी कीमत पर दुश्मन की ताकत का सामना करें जब तक कि

अंतिम दुश्मन सैनिक तक नहीं मारा जाता। देश को पश्चिमी पाकिस्तानियों की निर्मम तानाशाही से अब बचाना है।[5] खबर में बताया गया कि कैसे देश में शांतिपूर्ण समझौते के जरिये माहौल ठीक होने की संभावना दिख रही थी, लेकिन अचानक से जटिल परिस्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें दो लोगों के नेतृत्व में सब कुछ विपरीत नजर आने लगा है। याह्या खान द्वारा इसी के बाद अपनी सेना को पूरे आन्दोलन को किसी भी कीमत पर कुचलने के आदेश दिए गए ताकि सरकार का पूर्ण अधिकार स्थापित हो सके।

न्यूयॉर्क टाइम्स ने जून 1971 में जॉन केनेथ गेलब्रेथ के उस लेख को छापा जिसे उन्होंने अमेरिकी राजदूत के रूप में भारत की यात्रा के बाद लिखा था। लेख में उन्होंने भारत में युद्ध के कारण बढ़ी शरणार्थियों की समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने चार बिन्दुओं का उल्लेख किया था जिसमें बंगाल त्रासदी को लेकर सबसे पहले शरणार्थी समस्या को गंभीरता से लेते हुए उसके तत्कालीन निवारण के लिए हर संभव प्रयास किए जाने पर जोर दिया गया था।[6] गेलब्रेथ शुरू में पूर्वी बंगाल की राजनीतिक समस्याओं को लेकर बोलने में अनिच्छुक रहे लेकिन बाद में उन्होंने इस त्रासदी को लेकर अपने विचार स्पष्ट रूप से मीडिया के माध्यम से सबके सामने रखे जिसमें राजनीतिक समस्या से पहले शरणार्थियों की समस्या के निवारण को प्रमुखता दी गई।

सन्दर्भ :

1. टाइम, 15 मार्च 1971
2. वही
3. वही
4. टाइम, 20 दिसंबर 1971
5. न्यूज वीक, 5 अप्रैल, 1971
6. न्यूयॉर्क टाइम्स, जून, 1971

(लेखिका महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के जनसंचार विभाग में पीएच.डी. की शोधार्थी हैं।)

बुन्देलखण्ड की प्रखर पत्रकार

हाल ही में 'उदिता सम्मान-2020' से सम्मानित ममता यादव की पहचान प्रदेश में उन महिला पत्रकारों में होती है,जहाँ वह खड़ी हो जाती हैं लाइन वहीं से शुरू हो जाती है। अपनी बात को सटीक रूप से कहने वाली ममता प्रदेश के चर्चित वेब पोर्टल 'मल्हार मीडिया' की संपादक हैं। ममता ने अत्यंत कंटीली राहों पर चलते हुए प्रदेश की पत्रकारिता में खास मुकाम बनाया है। बुन्देलखण्ड से जब सक्रिय महिला पत्रकारों की चर्चा होती है तो पहला नाम ममता यादव का होता है।

ममता का कहना है कि पत्रकार सिर्फ पत्रकार होता है महिला या पुरुष नहीं। महिलाओं को सिर्फ महिला होने की वजह से सॉफ्ट कॉर्नर नहीं ढूँढना चाहिए। सही दिशा में काम करिए और खुद को साबित करिए। ममता को श्रेष्ठ पत्रकारिता के लिए कई सम्मान-पुरस्कार मिल चुके हैं। इनमें 'भड़ास मीडिया सरोकार अवार्ड' दिल्ली और माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान द्वारा प्रदत्त 'लाल बलदेव सिंह पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है।

विदग्ध वाङ्मय की विशिष्ट गद्य कृति

कल्पतरु की उत्सव लीला

■ श्रीपर्णा तरफदार

श्री कृष्ण बिहारी मिश्र

आज की रफ्तार-भरी जिंदगी के बीच कृष्ण बिहारी जी एक ऐसे कृती-व्यक्तित्व हैं जिन्होंने इस स्वार्थी एवं भोग-विलास में लिप्त संसार में, निर्लिप्त रहकर अपने लेखन के माध्यम से मानव समाज को सही दिशा देने का प्रयास किया है। इस अनात्मीय समय में उन जैसा आत्मीय विरल है। ऐसे व्यक्ति की कलम जब उस आध्यात्मिक पुरुष के जीवन को समेटती है जो 19वीं सदी में बंगाल-नवजागरण की लहरों के बीच आविर्भूत होकर अपनी अमर वाणियों से मानव समाज को जाग्रत किया, तो वह कृति अपने आप में महत्वपूर्ण बन जाती है। सांस्कृतिक नवजागरण के इस विधायक के सन्दर्भ में कृष्ण बिहारी जी लिखते हैं -''अपने आलोक-आपूरित लीला-प्रसंग और सहज आध्यात्मिक उद्भावना के आत्मीय स्पर्श से परमहंस श्री रामकृष्णदेव ने ब्राह्मनायक केशवचंद्र सेन, ब्राह्म आचार्य विजयकृष्ण गोस्वामी और शशधर विदग्धजन के ही जीवन में रूपांतर नहीं रचा; बल्कि समाज में कदाचार-लिप्त के रूप में कुख्यात (नाट्यशिल्पी एवं रंगकर्मी गिरीशचंद्र घोष), पतिता नारी चरित्र (वारांगना-अभिनेत्री 'नटी विनोदिनी') और अस्पृश्य-अभिशाप से आहत लोगों (दक्षिणेश्वर काली मंदिर के जमादार रसिकलाल हाड़ी) का अपने अंतरंग संस्पर्श से ग्लानि-मोचन कर उनके मन:लोक को उज्ज्वल सोपान की ओर प्रवृत्त किया; दुर्भाग्यग्रस्त नारी-चरित्र में आशा-आश्वासन रचकर मरू-मनोभूमि को हरीतिमा-सम्पन्न किया जैसे अभिशप्त अहल्या का राम ने उद्धार किया था।'' वस्तुत: विशृंखला एवं अशांति के तूफान के बीच सनातन धर्म की शाश्वत स्निग्ध ज्योति एवं विश्व-विस्तीर्ण उदार उन्मुक्ति के लिए सुदूर दक्षिणेश्वर में उस महासत्ता परमहंस श्री रामकृष्ण देव का आगमन हुआ था जिन्होंने मृतप्राय: समाज में नि:श्वास और आश्वास का संचार करते हुए चतुर्दिक प्रेम, शान्ति, संगति, संहति एवं समन्वय की भावना का विस्तार किया।

'कल्पतरु की उत्सव लीला' में कृष्ण बिहारी जी द्वारा गुँथे गए अक्षरों में 'कामारपुकुर के सौभाग्य' गदाधर चट्टोपाध्याय (परमहंस) का जीवन एवं तत्कालीन परिदृश्य मूर्त हो उठा है। सच तो यह है कि ठाकुर के जीवन को वही अक्षरबद्ध कर सकता है जो स्वयं सौ-टका खांटी हो। अकारण नहीं कि पंडित विद्यानिवास मिश्र ने श्री रामकृष्ण देव के जीवन-प्रसंग को उपजीव्य बनाकर उन्हें पुस्तक रचने की प्रेरणा दी। ठाकुर के जीवन में गहरे उतरकर उसे संपूर्णत: आत्मसात करते हुए प्रस्तुत करना सरल नहीं है। लेकिन कृष्ण बिहारी जी ने इस दु:साध्य कार्य को भी दक्षता के साथ सम्पन्न किया तथा ठाकुर के मुहावरे में और उन्हीं के मुँह से पूरी कथा कहलवायी। परमहंसदेव अपने समय में वेद-वेदान्त की बातों, जीवन के गूढ़ सत्य को भी अपनी सहज-कौतुकी भाषा में उजागर कर देते थे। इसलिए वे समाज के हर श्रेणी

के मनुष्य के हृदय में अपनी जगह बनाने में सक्षम हुए। कृष्ण बिहारी जी ने ठाकुर की उसी शैली को अपनाकर इस सुन्दर कृति की रचना की है – ''ठाकुर के मुहावरे में, उन्हीं के मुँह से, पूरी कथा कहलाना सचमुच बड़ी चुनौती थी। असमंजस बड़ा गहरा था, पर जब लिखना शुरू किया तो लगा जैसे ठाकुर अपनी सहज कौतुकी शैली में मुझसे बोल-बतिया रहे हैं, मुझे केवल लिपिक की भूमिका पूरी करनी है।'' यह कृष्ण बिहारी जी की उदारता ही है जिसके कारण उन्होंने स्वयं को केवल लिपिक कहा। उन्होंने जहाँ एक हाथ से ठाकुर की जीवन शैली को अपने रससिक्त शब्दों में कलात्मक अभिव्यक्ति दी वहीं दूसरे से इस स्तुत्य कार्य को ईश्वर के पादपद्मों में समर्पित कर दिया। वास्तव में इस कृति से गुजरते हुए कहीं भी शुष्कता या नीरसता का बोध नहीं होता बल्कि हृदय में रस का संचार होता है एवं लोकोत्तर आनंद की प्राप्ति होती है। कहीं-कहीं बांग्ला की शब्दावली के प्रयोग के साथ भक्त रामप्रसाद एवं ब्राह्म समाज के गीतों (बांग्ला में) के समावेश से यहाँ हिंदी और बांग्ला के सुन्दर योग को भी देखा जा सकता है, साथ ही संस्कृत और भोजपुरी की छटा तो है ही। राममूर्ति त्रिपाठी ने ठीक ही लिखा है – ''डा. कृष्ण बिहारी मिश्र ने आध्यात्मिक संवेदना की अचूक (अचुक) स्याही से इस कृति का प्रणयन किया है। स्याही की आद्यंत एकरसता और एकरूपता अप्रतिम है। इस संवेदना का एक तत्ववाद है जो गंध की तरह कृति में अंतर्व्याप्त है। कहा जाता है – 'देवो भूत्वा देवं यजेत' – जिसकी पूजा-आराधना करनी हो – आराधक पहले वही होने का प्रयास करे। उस भावभूमि पर आरूढ़ होने पर वह यथासंभव ठीक दिखाई पड़ता है। कृति से गुजर जाने के बाद लगता है कि डा. मिश्र की चेतना पर पांडित्य का आतंक नहीं है और न ही वे उस भाव पर आरूढ़ होकर कल्पतरु के लीला-रस का साक्षात्कार कर रहे हैं।..... अत: पूरी कृति में भाव का ही साम्राज्य है। तत्ववाद के रत्न अनायास यत्र-तत्र उमड़ पड़ते हैं।''

बंगाल में जिस समय चारों तरफ अँगरेजों का दबदबा और ब्राह्मणवाद का बोलबाला था, जातिवाद एवं अंधविश्वास के विषाक्त धुँए में मनुष्य का दम घुटने लगा था, स्त्रियों पर अमानवीय अत्याचार हो रहे थे, उस दौरान एक साथ कई विभूतियों का प्रादुर्भाव हुआ जो वेद-उपनिषद् की अभिज्ञता के आधार पर तर्क के तीर से तमस से लड़ रहे थे। इन विभूतियों के बीच उस महासत्ता परमहंस देव का आविर्भाव हुआ जो औपनिषदिक ऋषियों की तरह मेधा, बहुश्रुतता और तर्क को सत्योप्लब्धि के लिए अपर्याप्त ही नहीं, बाधक मानते थे, साथ ही वे ऐसी पंडिताई और शास्त्र-ज्ञान को अस्वीकार करते हैं जो कूड़ा-कुंठा और लघुता से मुक्त कर उदार नहीं बनाता। कृष्ण बिहारी जी की टिप्पणी है – ''रामकृष्ण देव की विवेक-कसौटी केवल उसे ही विद्या मानती थी, जो बंधन-मुक्ति की सुगम राह रचती है और परा विद्या की ज्योति की ओर अभिमुख करती है।'' वस्तुत: तत्समय ठाकुर ने 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की विचारधारा को पुनर्स्थापित करते हुए इस बात को प्रसारित किया कि सेवा ही संस्कृति का सार एवं धर्म है। उन्होंने भक्ति के आदर्श को वेदान्त-ज्ञान के साथ समन्वित कर 'शिव ज्ञान से जीव की सेवा' को ही महत्व दिया था। अर्थात शिव-रूप जीवों (प्राणी) की सेवा ही असली भक्ति है।

सगुण ईश्वर के उपासक एवं मंदिर में विग्रह-पूजा करने के बावजूद ठाकुर मनुष्य में ईश्वर को देखते थे। दरअसल उनकी दृष्टि में 'जीवित देवता' की पूजा (सेवा) ही असल तीर्थ है। तभी तो रानी रासमणि के दामाद मथुर के साथ तीर्थ पर निकलकर जब उन्होंने गरीब, भूखे एवं वस्त्रहीन संथालों को देखा तो उनकी सेवा के लिए तत्पर हुए। यही नहीं, उन्होंने मथुर के भ्रम का निवारण करने के साथ धर्म का असल पाठ भी पढ़ाया।

ठाकुर अपनी कौतुकी मुद्रा में कहते हैं – उसे भ्रम था कि शिवलिंग को जल चढ़ाकर उसने सुरक्षा–कवच उपलब्ध कर लिया है। मैंने उसे समझाया कि ऐसे नहीं होगा, जीवित शिव–पार्वती, कार्तिकेय, गणेश निरन्न–निर्वस्त्र यहाँ कलप रहे हैं, इन्हें पूजो तब तीर्थ का फल मिलेगा। धर्म वह नहीं है जिसे तू समझ रहा है। रानी का दामाद, अहंकार से चेहरा तमतमा गया। कहने लगा, ''मैं सदावर्त करने नहीं निकला हूँ।'' मैंने कहा कि ''मैं तो तीर्थ करने निकला हूँ मगर, इसलिए देवता को बिना नैवेद्य निवेदित किए अन्न का एक भी कण मुँह में नहीं डालूँगा।'' सत्याग्रह का जोर देखा तो काँपने लगा, अहंकार और क्रोध से। मगर मेरा क्रोध नाटक थोड़े था। अन्नपूर्णा के इशारे पर बैठ गया अनशन करके। गरीब बाभन और राजा की लड़ाई थी। सीख गए बच्चू। पसीना छूट गया सत्याग्रह के ताप से।..... बोला, ''खूब आपने धर्म का अर्थ समझाया बाबा!''

ध्यातव्य है कि भारत के प्राचीन ग्रंथों में भी मनुष्यता को ही धर्म माना गया है, जिसमें कर्तव्य, अहिंसा, न्याय, सदाचरण एवं सद्गुण का समावेश है। एक आधुनिक संत की वाणी है, ''मानुष की उपेक्षा कर माँ (ईश्वर) को पाना असंभव है क्योंकि मानुष शब्द का प्रथमाक्षर माँ है।'' ठाकुर इस तथ्य से परिचित थे और उनका स्पष्ट कथन था – ''जो परायी पीर से संवेदित नहीं होता वह कैसा वेदांती?'' इसलिए उनके लिए विद्यासागर करुणा के सागर थे जो सही मायने में सगुणोपासक थे – ''कमाई है विद्यासागर की। करुणा में पगा है उसका ज्ञान। जीवित देवता की पूजा करता है। सगुणोपासना। दुर्भाग्य–ग्रस्त लोगों की पूजा ही सच्ची भक्ति है। भक्त है विद्यासागर। न धूप, न दीप, न अक्षत, न रोली, न घंटी, न माला, न ज्ञान का दंभ, न वेदान्त का ढोंग। धोती–फतुआ, जनेऊ और मोटी टिकिया–वाले तो और भी हैं, पर विद्यासागर असली ब्राह्मण है, अपनी विद्या और करुणा के बल पर।'' वस्तुत: सच्चे पंडित एवं मनीषियों के ज्ञान एवं कीर्ति श्रीरामकृष्ण देव को आकृष्ट करते थे। व्यक्ति के चरित्र के आधार पर उसकी पवित्रता का निर्णय करने वाले ठाकुर के लिए 'जोलहा–मुसलमान और बाभन में तथा बाभन और लोहार में' कोई भेद नहीं था। उनकी दृष्टि में सभी समान थे। तभी तो अपने उपनयन–संस्कार में उन्होंने हठपूर्वक पहली भीख धनी (लोहार की बेटी) से ली। क्योंकि बचपन में ही उनका साक्षात उस सत्य से हो चुका था कि न कोई छोटा है न बड़ा, सभी ईश्वर की संतान हैं। ठाकुर 'धर्म की मचान पर भाषण देने' वाले पंडितों में से नहीं थे। वे धर्म को जीते थे और छल–कपट एवं कामिनी–कंचन को लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में बाधक मानते थे। उनकी दृष्टि में सच्ची श्रद्धा, प्रेम एवं आस्था ही लक्ष्य तक पहुँचने का सही मार्ग है। बहरहाल ठाकुर का जीवन ईश्वर के प्रति ही समर्पित था। परन्तु उनके चतुर्दिक व्याप्त सामाजिक विषमताओं ने भी उनका ध्यान आकृष्ट किया था। इसलिए उन्होंने तत्कालीन समस्याओं को देखते–समझते हुए अपने आचरण और वाणी के माध्यम से उसका विरोध किया था। धर्म के नाम पर फैली विकृतियों को दूर किया था। ईश्वर की कृपा प्राप्ति के लिए वे उपवास इत्यादि में विश्वास नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में शूकर का माँस खाने वाले आदमी में भी यदि ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति हो तो वो धन्य है अन्यथा हविष्य भोजन करने वाले मनुष्य में यदि संसार के प्रति आसक्ति हो तो उसका 'मूल्यवान मानुष जीवन अकारथ है'। उनका स्पष्ट मत था कि 'खाली पेट धर्म नहीं होता'। गुरु की वाणी को समझते हुए विवेकानंद ने ईसाई धर्म–प्रचारकों से कहा था – ''जो रोटी का भूखा है उसके सामने धर्म–पोथियाँ पेश करना उसका अपमान करना है।'' (बेहया का जंगल और नई–नई घेरान)।

परमहंसदेव अपने आत्मभिमान को विसर्जित कर मंदिरों में भिखारियों के जूठे पत्तलों को उठाने और साफ करने से हिचकते नहीं थे। उन्होंने कहा

था कि भक्तों की कोई जात नहीं होती। इसी संस्कार-भाव को उनकी भार्या (पत्नी) शारदा माँ ने भी सहर्ष अपनाया था। कृष्ण बिहारी जी श्री माँ के संदर्भ में लिखते हैं -''उनका संवेदन तंत्र परमहंसदेव जैसा ही स्पर्श-कातर था।..... उनके पारिवारिक संदर्भ और काल-संस्कार को देखते, अपराधी के रूप में कुख्यात एक मुसलमान चरित्र को अपने आँगन में बैठाकर अपने हाथ से भोजन कराना और उसकी जूठी थाली स्वयं श्रद्धापूर्वक धोना श्रीरामकृष्ण परमहंस की गृहिणी के लिए ही संभव था और तत्कालीन सामाजिक दृष्टि से ऐसी क्रांतिकारी भूमिका थी, जो परमहंस-विभूति को गोचर समृद्धि देने वाली घटना थी, जिसका लोक-चरित्र पर सीधा और गहरा असर पड़ता था।'' अकेली शारदा माँ ने ही नहीं बल्कि ठाकुर के सभी शिष्यों ने भी उनका अनुगमन किया था। विशेषकर विवेकानंद ने, जिन्होंने अपने गुरु के आदर्श और विचारधारा को समूचे विश्व के दरबार में प्रतिष्ठित किया।

वस्तुत: ठाकुर ने सामाजिक उत्थान एवं मानव कल्याण हेतु 'यंग बेंगाल' (Young Bengal) का संधान किया था। उन्होंने युवा-शिष्यों का एक ऐसा दल तैयार किया जो समाज में फैली विकृतियों को दूर कर सत्यम, शिवम् एवं सुन्दरम् की स्थापना कर सके। पोथी-विद्या को अपर्याप्त मानने वाले परमहंसदेव की भले ही पोथी-पाठशाला में अरुचि रही हो परन्तु परवर्तीकाल में शिक्षा के प्रति उनके अनुराग का परिचय तब मिलता है जब वे लाटू महाराज को शिक्षित करने का प्रयास करते हैं। श्री माँ भी भक्तों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती थीं। केशवचंद्र के शब्दों में वो 'पति की ऊँचाई के प्रति समर्पित' थीं। श्री माँ जिस तरह अपने पति की ऊँचाइयों से परिचित थीं उसी प्रकार ठाकुर भी अपनी भार्या की ऊँचाइयों से परिचित थे। तभी तो उन्होंने अपनी भार्या की षोडशोपचार से पूजा करके उन्हें माँ (जगदम्बा) का स्थान दिया था। संसार के सम्मुख विवाह के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए पति-पत्नी भोगासन पर न बैठकर, योगासन पर बैठे। जो कामिनी हो सकती थी वह ज्योतिर्मयी जगदात्री बनी। रति की पृथ्वी पर ठाकुर ने प्रतिष्ठित किया मूर्तिमती वि-रति को - अतृप्ति के जगत में संतोषमयी को। नारी की बृहत्तम महिमा को उन्होंने नारी को ही अर्पित किया। कृष्ण बिहारी जी लिखते हैं -''स्त्री जाति की ऐसी शीर्ष प्रतिष्ठा मानव-इतिहास में विरल है....।'' सच है कि स्त्री को जहाँ मनुष्य का दर्जा ही नहीं दिया जाता है वहाँ ठाकुर के लिए वह श्रद्धा और सम्मान की पात्र है। इसलिए स्त्री का पर्दे में कैद रहना उनके लिए असहनीय था। यहाँ तक कि जिस प्रकृति प्रदत्त माहवारी के कारण स्त्री को पूजा घर से दूर रखा जाता है, उसका भी विरोध ठाकुर ने किया था। उनकी दृष्टि में यदि कामाख्या माँ की पूजा शक्ति के रूप में संभव है तो उसी देवी (स्त्री) के साथ प्राकृतिक चक्र के कारण अछूतों जैसा व्यवहार क्यों? वास्तव में ठाकुर केवल संत नहीं थे बल्कि एक क्रांतिकारी थे जिन्होंने जीवंत उदाहरणों के माध्यम से तत्कालीन समाज को अंधकार मुक्त करने का सफल प्रयास किया।

परमहंस देव ने भारत के मूल मन्त्र, त्याग और सेवा को आत्मसात करते हुए, उस मन्त्र को अपने शिष्यों के कानों में फूँका था तथा उन्हें एक ऐसे भारतवर्ष का स्वप्न दिखाया था जहाँ मनुष्य-मनुष्य का कोई विभेद नहीं होगा; जात-पात, छूत-अछूत को भुलाकर सभी सुख और शान्ति से रहेंगे। यद्यपि गले के असाध्य रोग से पीड़ित ठाकुर का पार्थिव शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया है परन्तु उनकी वाणी की अनुगूँज आज भी सुनाई देती है। उनका मुख्य लक्ष्य था मनुष्य की चेतना को जाग्रत करते हुए समाज में समानता का प्रसार करना। गुरु की शिक्षा एवं दीक्षा से अनुप्राणित प्रिय शिष्य नरेंद्र (विवेकानंद) ने भी उस भारत का स्वप्न देखा था

जो अपनी आध्यात्मिक चेतना के बलबूते पर हिंसा में उन्मत्त समस्त पृथ्वी को शान्ति के मार्ग पर प्रशस्त करेगा। इसलिए उन्होंने समूचे विश्व के सम्मुख भारत की आध्यात्मिक चेतना एवं शक्ति को उपस्थित किया। यही नहीं, गुरु के महत उद्देश्य को जानते-समझते हुए उन्होंने अपने तमाम गुरु भाइयों के साथ मिलकर समाज एवं मानव कल्याण हेतु रामकृष्ण मठ की स्थापना की।

श्रीरामकृष्ण देव नाना (विविध) पथ के पथिक थे - 'सर्वधर्म समभाव के विग्रह थे वे'। जिस प्रकार उन्होंने तोतापुरी तथा भैरवी माँ से दीक्षा ली थी उसी प्रकार इस्लाम में भी दीक्षा ली थी। विभिन्न पथ एवं मत के जरिये साधना करने के उपरांत उन्होंने कहा था - 'जितने मत उतने पथ' और सभी पथ एक ही जगह मिलित हुए हैं। एक ही तालाब के अलग-अलग घाट से पानी लेकर कोई उसे जल कहता है, कोई आब तो कोई वाटर। अंतत: है तो वो पानी ही। ईश्वर भी उस पानी की तरह ही एक है। केवल हम उन्हें भिन्न-भिन्न नाम से संबोधित करते हैं। तभी तो ठाकुर केशवचंद्र से कहते हैं - ''सुन रे केशव, असल बात जान ले, तू जिसे ब्रह्म कहता है, उसे ही मैं माँ कहता हूँ। तेरा ब्रह्म और मेरी माँ दो नहीं, एक ही हैं।'' वे कहते हैं ''माँ बड़ा कोमल शब्द है, नितांत अपना। माँ साथ रहती है तो भरोसा बना रहता है। इसीलिए मुझे माँ ही रुचती है।'' इस आखिरी वाक्य के संदर्भ में मुझे कृष्ण बिहारी जी की एक बात याद आ रही है। एक दिन बातचीत के दौरान उन्होंने मुझसे अनायास ही पूछा कि मैं अपनी माता को क्या कहकर संबोधित करती हूँ? मैंने उत्तर दिया 'माँ कहकर'। यह सुनकर उन्होंने मुस्कुराकर कहा 'माँ शब्द में जितनी कोमलता और अपनत्व है वो मम्मी या मम्मा शब्द में नहीं है। माँ शब्द अपने-आप में ही एक शक्ति है'। उस दिन यह बात सुनकर मैंने यही महसूस किया कि इस बेचैन समय में एक ऐसा व्यक्ति भी है जो अपनी परंपरा और संस्कृति को इतनी संजीदगी के साथ जी रहा है।

संवेदनहीनता के मौजूदा दौर में जहाँ मनुष्य का जीवन मूल्यों के अभाव में पतन की ओर उन्मुख हुआ है वहाँ श्रीरामकृष्ण देव की प्रासंगिकता बढ़ गई है। ऋषि-मुनियों ने मनुष्य-जीवन के जिन चार प्रयोजनों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का उल्लेख किया हैं उनमें धर्म को प्रथम स्थान दिया है। कारण धर्म ही भोग-विलास की प्रवृत्ति को संयमित करते हुए सही मार्ग दिखाता है। परन्तु वर्तमान समय में मानव-जीवन के उस चरम आदर्श धर्म का तात्पर्य, व्यक्तिगत एवं समष्टिगत जीवन में उसकी प्रयोजनीयता एवं प्रभाव प्रभृति विषय की सुस्पष्ट धारणा का अभाव दृष्टिगोचर होता है। आज आवश्यकता है धर्म के वास्तविक अर्थ से परिचित होने की, छीजते मूल्यों और ढहती संस्कृति को बचाने की। इसमें दो राय नहीं कि कृष्ण बिहारी जी ने अपने लेखन के माध्यम से मानवीय मूल्यों को निरंतर बचाने का प्रयास किया है। अकारण नहीं कि शेखावाटी-यात्रा के दौरान रामकृष्ण आश्रम के विच्छिन्नतावादी मनोभाव तथा आधुनिक संत, जो अपने धर्म को विस्मृत कर राजसिक जीवन बिता रहे हैं, उनके संदर्भ में लेखक के मन में प्रश्न उमड़ते हैं। इसलिए उन्होंने 'सारे धर्म-संप्रदाय को अपने महाभाव में समाहित करने को आग्रहशील' श्री रामकृष्ण देव के जीवन-प्रसंग पर उपलब्ध साहित्य का अवगाहन करके, युगीन सन्दर्भों के अनुरूप, सटीक स्थलों का चयन कर उसे प्रसंगानुकूल भाषा में अभिव्यक्त किया। इस दृष्टि से उनकी कृति 'कल्पतरु की उत्सव लीला' एक महापुरुष की जीवनी मात्र नहीं है, अपितु उस महासत्ता परमहंसदेव की कीर्तियों एवं वाणियों को पुनर्स्थापित करते हुए आधुनिक जीवन-जगत को सही दिशा में अग्रसर करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है। *(सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग बंगवासी मॉर्निंग कॉलेज, कोलकाता)*

(sreeparna27tarafdar@gmail.com)

नई किताब

'कर्मवीर के सौ साल'
महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ

■ डा. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

'कर्मवीर के सौ साल' सप्रे संग्रहालय के संस्थापक-संयोजक विजयदत्त श्रीधर द्वारा सम्पादित महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'कर्मवीर' के सौ वर्षों का इतिहास ही नहीं, अपितु उससे देश और समाज की सौ वर्षों की स्थिति और प्रगति पर भी प्रकाश पड़ता है। कर्मवीर एक प्रकार से देश के पत्रकारों और राजनेताओं की आचार-संहिता भी है। आज के पत्रकारों, राजनेताओं और साहित्यसेवी, शिक्षाविदों को अपनी ज्ञान-वृद्धि एवं आत्मावलोकन के लिए पठनीय ग्रन्थ है। किसी पत्र-सम्पादक में देश और समाज की स्थितियों के संदर्भ में क्या गुण होना चाहिए। वह बहुज्ञ हो, निर्भीक हो, नि:स्वार्थ हो, सेवा के लिए समर्पित हो, लोभ-लालच से मुक्त हो, सेवाभावी हो। उन्होंने जो सिद्धान्त निर्धारित किए हैं, उनके प्रति शपथबद्ध हो। 'कर्मवीर' का घोषणा पत्र दाखिल करने जबलपुर के जिला दंडाधिकारी मिथाइस के सम्मुख जब वे गए तब उनसे सवाल किया गया - ''एक अँगरेजी वीकली होते हुए आप हिन्दी साप्ताहिक क्यों निकालना चाहते हैं?'' चतुर्वेदी जी का जवाब था, ''आपका अँगरेजी पत्र तो दब्बू है। मैं वैसा पत्र नहीं निकालना चाहता हूँ। मैं ऐसा पत्र निकालना चाहूँगा कि ब्रिटिश शासन चलते-चलते रुक जाए।'' यही नहीं - अपने पहले ही सम्पादकीय में 'कर्मवीर' में लिखा - ''प्रशंसा और चाटुकारी का हलाहल न पीते हुए और पीसे जाने तथा दबा दिए जाने की चिन्ता न करते हुए प्रतिहिंसा के भावों से अपने आपको बचाएँगे और बड़े विनीत भाव से वह कहने के लिए विवश रहेंगे जिसे हम सच मानते हों.... हम स्वतंत्रता के हामी हैं। मुक्ति के उपासक हैं। राजनीति या समाज में, साहित्य या धर्म में, स्वतंत्रता का पथ रोका जाएगा, ठोकर मारने वाले का पहला प्रहार और घातक के शस्त्र का पहला वार आदर से लेकर मुक्त होने के लिए प्रस्तुत रहेंगे। दासता से हमारा मतभेद रहेगा। फिर चाहे वह शरीर की हो या मन की, व्यक्तियों की हो या परिस्थितियों की, दोषियों की हो निर्दोषियों की शासकों की हो या शासितों की।''

माखनलाल जी सर्वज्ञ न सही, बहुज्ञ निश्चित रूप से थे। पंचायत का चुनाव हो, आयुर्वेद की उपयोगिता, गोवध का विरोध, सरकारी स्कूलों की दुर्दशा और उनका विरोध, बजट या दिवाला, अँगरेजों द्वारा देश की सम्पत्ति की लूट, देश-प्रेम संबंधी पुस्तकों पर प्रतिबंध, किसानों की दुर्दशा, खेती की लूट, देशी भाषा के अखबारों पर प्रतिबंधात्मक कानून, बाल विवाह, अछूतोद्धार, वन्देमातरम् पर कुदृष्टि, राष्ट्रीय पर्व, डेमोक्रेसी जीवन और जनभाषा, पत्रकारिता और भाषा-साहित्य संबंधी उनका चिन्तन और विचार आदि से संबंधित उनके सम्पादकीय और निर्भीक अभिव्यक्ति उनकी निडरता के ही नहीं, व्यापक अध्ययन और गहन निष्कर्षों के प्रमाण हैं।

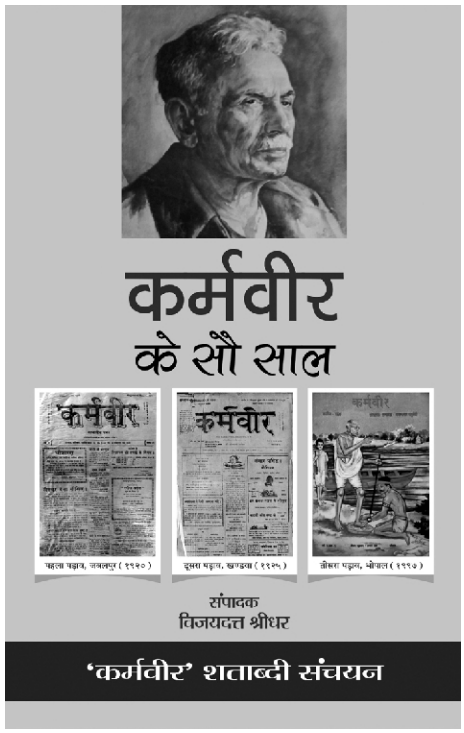

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान 'कर्मवीर' की तलाशी 63 बार हुई। चतुर्वेदी जी 12 बार कारावासी हुए। झंडा सत्याग्रह के वे आगुवा बने। सरकारी शिक्षा प्रणाली के बारे में 'कर्मवीर' ने लिखा – ''यह सरकारी नौकर तैयार करने के लिए प्रारंभ की गई थी। उसने सरकार को जज दिए, उन न्यायालयों के लिए जिनकी निष्पक्षता में हमें संदेह है। सरकार को उसने वकील दिए, जिन्होंने न्याय कराने के नाम पर हमारे बीच कलह को ही उत्तेजना दी। सरकार को उसने ऐसे कौंसिलर दिए, जो अधिकतर जी हुजूर का पाठ रटते हैं और खान बहादुरी और राय बहादुरी को अपना सौभाग्य मानते हैं।'' ग्रन्थ सम्पादक श्रीधर के शब्दों में – '' 'कैसा भीषण संयोग है कि सौ साल पहले लिखी गई दादा की यह टिप्पणी आज भी शिक्षा की दुर्दशा के संदर्भ में कड़वी सच्चाई नजर आती है।''

श्रीधर जी ने माखनलाल जी के संदर्भ में उनके लेखों पर बीच-बीच में ऐसी टिप्पणियाँ की हैं जो आज का दिग्दर्शन कराती हैं। श्रीधर जी ने अपने सम्पादकीय में सारे ग्रन्थ का निचोड़ प्रस्तुत कर दिया है। जो ग्रन्थ को पढ़कर उनके सम्पादकीय पढ़ेंगे, वे सब इसका अनुभव करेंगे। मुझे ऐसा लगा जैसे श्रीधर जी ने उनके निकट रहकर यह सब नोट किया है। मैंने जिज्ञासावश उनसे यही प्रश्न किया – ''क्या आप उनके निकट रहे हैं? आपका सम्पादकीय पढ़कर ऐसा ही लगता है।'' उन्होंने बताया कि उनके निकट रहने का मौका कभी नहीं मिला। जो जाना, समझा, लिखा तथा उनके सम्पादकीय लेख, जीवनी आदि पढ़कर, अध्ययन कर लिखा है। सम्पादकीय उनकी कुशल लेखनी का प्रमाण है जिसे पढ़कर तुलसीदास जी की पंक्ति सहसा याद आ जाती है – थोरे यह सब कहो बुझाई। सम्पादकीय में एक भी प्रमुख बात नहीं छूट पाई।

माखनलाल जी ने भारतीय खेती और किसानों की दुर्दशा पर प्रकाश डालते हुए लिखा – ''भारत का भाग्य विधाता, भारत में महान धन उपजाने वाला, भारत में सबसे बड़ी तादात रखने वाला किसान दुर्दशा से पीड़ित, अकाल का मारा हुआ, कर्ज से दबा हुआ है। 74.5 फीसदी की हालत यह है कि इनमें से 50 को दो जून पेट भर अनाज नसीब नहीं हो पाता।.... किसान के शरीर पर चिन्दियाँ लटकती हैं अथवा वह अधनंगा रहकर ही अपने दिनों को गुजारता है।'' इसी प्रकार हिन्दी के पाठकों, साहित्य और पत्रकारिता पर उन्होंने लिखा था – ''मैंने तो जर्नलिज्म में साहित्य को स्थान दिया है। बुद्धि के ऐरावत पर म्युनिसिपल कूड़ा ढोने का जो अभ्यास किया जा रहा है अथवा ऐसे प्रयोग से जो सफलता प्राप्त की जा रही है उसे मैं पत्रकारिता नहीं मानता।'' हिन्दी भाषा के पाठकों पर कटाक्ष करते हुए उन्होंने लिखा, मुफ्त में पढ़ने की पद्धति हिन्दी से अधिक किसी भाषा में नहीं।..... रोटी, कपड़े, शराब और शौक की चीजों का मूल्य तो वह देता है पर ज्ञान और ज्ञान-प्रसाधन का मूल्य चुकाने को तैयार

जवाहरगंज खण्डवा स्थित इसी मकान से
दादा माखनलाल चतुर्वेदी का 'कर्मवीर' प्रकाशित होता था

ऊँचाई पर 'कर्मवीर' पहुँचा। कितने-कितने लोगों ने अपने को समर्पित किया। हर सम्पादकीय आज के सम्पादकों की मार्गदर्शिका है। सम्पादकीय वक्तव्यों के अलावा माखनलाल जी का 'सम्पादक सम्मेलन' में अध्यक्षीय पद से दिया गया उद्‌बोधन और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय पद से दिया गया वक्तव्य ऐतिहासिक हैं। दोनों अध्यक्षीय वक्तव्य एक तरह से शोध-निबंध हैं जिनमें उनका आरंभ और विकास, गुण-अवगुण, उसके विकास में योगदान करने वाले प्रमुख लोगों, अखबारों-पत्रिकाओं के योगदान की विस्तृत चर्चा है। देश और समाज, शिक्षा और ज्ञान, राष्ट्रीय चेतना के विकास का विशद अवलोकन और विवेचन है। गुण-अवगुण का बिन्दुवार आकलन है। पत्रकारिता अपनी महत्ता के बल पर हिमालयी चोटी पर पहुँचती है। साथ ही उस ऊँचाई से फिसलने का खतरा भी उतना ही होता है। पत्रकारिता और साहित्य अभिन्न हैं। उन्होंने देश के विभिन्न भाषा एवं क्षेत्र के पत्रकारों-साहित्यकारों और उनके कृतित्व के साथ योगदान की उदारता से चर्चा की है। उनके मतानुसार ज्ञानियों-संतों और संगीतकारों ने दिया है उसी को साहित्य कहते हैं। विश्व निर्माता की तरह साहित्य निर्माता की कुछ जिम्मेदारियाँ हैं और माता की जगह निर्माता के पथ की कुछ लाचारियाँ भी हैं किन्तु इस मातृत्व और पितृत्व से आज का कलाकार जैसे ऊब रहा है।.... प्रगतिशील साहित्यिक का पथ कड़वा भी तो होता है। किसी साधनाशील कला पर प्रतिभाहीनता के आक्रमण का वह उचित समय होता है जब अपने क्रांतिमय विचारों के कारण धनिक उससे बिगड़ उठते हैं नहीं। हिन्दी का सबसे बड़ा शत्रु यही है।

'कर्मवीर' के सम्पादन के लिए उन्होंने यह सिद्धान्त तय किए थे -

1. 'कर्मवीर' सम्पादन और कर्मवीर-परिवार की कठिनाइयों का उल्लेख न करना।
2. कभी धन के लिए अपील न निकालना।
3. ग्राहक संख्या बढ़ाने के लिए 'कर्मवीर' के कालमों में न लिखना।
4. क्रान्तिवादी पार्टी के खिलाफ वक्तव्य न छापना।
5. सनसनीखेज खबरें नहीं छापना।
6. विज्ञापन जुटाने के लिए किसी आदमी की नियुक्ति न करना।

पत्रकारों के लिए उन्होंने लिखा - ''तुम्हारी कलम की कीमत लगेगी। बार-बार लगेगी। लेकिन जिस क्षण वह कीमत स्वीकार कर लोगे, हमेशा के लिए कलम की कीमत खो बैठोगे।'' श्रीधर जी ने आज की पत्रकारिता पर प्रश्न उठाए हैं। इन सिद्धान्तों पर आज की पत्रकारिता की तुलना करने की जरूरत है।

'विरासत : तीन पड़ाव, तीन अग्रलेख' में 'कर्मवीर' की पूरी कहानी अंकित है। कितनी कठिनाइयों को झेलते हुए संकल्पित मानसिकता से

और उसे साधनहीन रखकर दारिद्र्य प्रदान करते हैं। शासन उसे रूढ़ियों से ऊपर पाकर संदेह करता है।

मुझे एक चीज जो खटकती रहती है, वह हमारे आलोचना ग्रन्थों का मूल्य मापन। दस-पंद्रह वर्ष के कलाकारों की हम चर्चा करने बैठ जाते हैं। कुछ को गण्य सिद्ध करते हैं, कुछ नगण्य।..... आचार्यत्व भी हिन्दी संसार की बहुत बड़ी कमजोरी है। हिन्दी जगत में कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ आचार्य ही उत्पन्न होते हैं। अनुयायी उत्पन्न ही नहीं होते। हमारे पत्रकार का अपना पुस्तकालय नहीं है। वह रोटी खरीदकर खा सकता है। जो रोटी खरीदकर खा सकता है, जो रोटी उसे अपने आश्रितों तक पहुँचानी होती है, किन्तु उसका मस्तिष्क ग्रन्थों और साहित्य के खाद्य पदार्थ से पुष्ट नहीं रखा जा सकता।''

लगभग 60 पृष्ठीय लम्बे अपने दो लेखों में माखनलाल जी ने पत्रकारिता और भाषा-साहित्य का गहन विवेचन किया है। ये ऐसे ज्ञानवर्द्धक उपयोगी लेख हैं, जिन्हें गीता की तरह प्रत्येक पत्रकार और साहित्यकार को पढ़ना चाहिए। पत्रकारों और साहित्यकारों की विशेषताओं का उल्लेख कर उनका नामोल्लेख किया है। लेख के अंत में उनका आह्वान है - ''उसके वंदन और नयी पीढ़ी के निर्माण की प्रतिज्ञा के साथ हिन्दी भाषी गायक आओ 'अक्षर' की आराधना करें, शब्द को सार्थक करें, स्वर का गुंजन करें, भारती के चरणों में व्यंजन चढ़ावें, टूटते देश और टूटती भाषा में संधि साधन करें, पदों का संभालकर जमावें, अंगों को बलवान बनावें और राष्ट्र भारती को मस्तक उठाकर, मस्तक झुकाकर और आवश्यकता होने पर हथेली पर मस्तक उतारकर वहाँ ले चलें जहाँ से वह विश्व की स्वतंत्र भाषाओं की बराबरी के बोल बोल सके।'' चतुर्वेदी जी ने भरतपुर के सम्पादक सम्मेलन में अध्यक्ष की आसन्दी से यह भाषण सन 1927 में दिया था। हिन्दी भाषा और साहित्य संबंधी वक्तव्य सन 1943 ई. में हिन्दी सम्मेलन के हरिद्वार अधिवेशन में अध्यक्ष पद से दिया था।

'कर्मवीर के सौ साल' में लगभग 60 सम्पादकीय आलेखों के साथ ये दीर्घ किन्तु महत्वपूर्ण दो लेख भी संकलित हैं। इससे चतुर्वेदी जी की भाषा-शैली-चिन्तन प्रक्रिया के अलावा उनके देश-समाज, राष्ट्र और भाषा-साहित्य तथा पत्रकारिता संबंधी विचारों से भी परिचय होता है।

इनके अतिरिक्त, कर्मवीर के तीसरे पड़ाव (भोपाल, 1997) में प्रकाशित श्री विजयदत्त श्रीधर के चार निबंध भी संकलित हैं - एक, मोहन से महात्मा, जिसमें गांधी जी की जीवन यात्रा की प्रमुख घटनाएँ अंकित की गई हैं। उनके प्रमुख सिद्धान्त और विश्व विख्यात लोगों की धारणाएँ प्रकट की गई हैं। चतुर्वेदी जी एवं श्रीधर जी के माधवराव सप्रे जी प्रणम्य हैं। 'कर्मवीर' के सम्पादन-प्रकाशन में उनकी प्रारंभ से ही सक्रिय भूमिका रही है। श्रीधर जी ने उनकी गरिमामयी जीवनी अंकित की है। अन्य संस्थाओं को सहयोग देने, ग्रन्थ लेखन, अनुवाद आदि कार्यों की पूरी जानकारी दी। सप्रे जी सिद्धान्त निष्ठ व्यक्ति थे। 'दासबोध' नामक उनका ग्रन्थ उनका कीर्ति ग्रन्थ है। एक तीसरा लेख भी श्रीधर जी का है जिसमें बांग्ला विजय की गाथा अंकित है। जिसमें पाकिस्तान के सेना प्रमुख ने अपने 90 हजार सैनिकों के साथ समर्पण किया था। श्रीधर के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद यह ऐसी दूसरी घटना थी। चन्द्रगुप्त के सामने सिल्यूकस ने समर्पण किया था। तीसरा लेख पानी की महत्ता का दिग्दर्शन कराने वाला है, जिसकी महिमा की गाथा का उल्लेख वेदों तक में अंकित है।

कुल मिलाकर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ के सम्पादन के लिए श्री विजयदत्त श्रीधर बधाई के पात्र हैं। प्रकाशक श्री विवेक श्रीधर का योगदान भी अविस्मरणीय है। ❑❑

खबर खबरवालों की

■ संजय द्विवेदी

बलदेवभाई बने कुलपति

वरिष्ठ पत्रकार बलदेव भाई शर्मा को रायपुर स्थित कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया है। उन्होंने अपना कार्यभार ग्रहण कर लिया है। हाल तक वे हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला स्थित हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। छह अक्टूबर 1955 को उत्तरप्रदेश के मथुरा जिले के गाँव पटलौनी (बल्देव) में जन्मे श्री शर्मा करीब चार दशक से पत्रकारिता में सक्रिय हैं। वे स्वदेश, दैनिक भास्कर, अमर उजाला, पाञ्चजन्य, और नेशनल दुनिया के संपादक रहे हैं। श्री शर्मा नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। उन्हें मध्यप्रदेश शासन के 'पं. माणिकचंद वाजपेयी राष्ट्रीय पत्रकारिता सम्मान', स्वामी अखंडानंद मेमोरियल ट्रस्ट, मुंबई का रचनात्मक पत्रकारिता राष्ट्रीय सम्मान और केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा 'पंडित माधवराव सप्रे साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान' से सम्मानित किया जा चुका है। (नोट : 24 मार्च को छत्तीसगढ़ सरकार ने वि.वि.का नाम बदलकर 'चन्दूलाल चन्द्राकर पत्रकारिता एवं जनसंचार वि.वि.' कर दिया है।)

बंद हुआ 'हमारा महानगर'

मुंबई से छपने वाला प्रमुख हिंदी समाचार पत्र 'हमारा महानगर' अब बंद हो गया है। अखबार के प्रबंधन ने अखबार को बंद करने का फैसला किया है। अखबार के संपादक राघवेंद्र नाथ द्विवेदी हैं। पहले यह अखबार निखिल वागले निकाला करते थे और बाद में इसे दूसरे प्रबंधन ने खरीद लिया था। बताया जाता है कि कर्मचारियों और प्रबंधन के मुकदमों और विवादों के बीच इसे बंद किया गया है।

पीयूष पाण्डेय जी समूह से जुड़े

जी एंटरटेनमेंट एंटरप्राइजेज लिमिटेड ने पद्मश्री से अलंकृत जाने-माने विज्ञापन गुरु पीयूष पाण्डेय को कंपनी का स्वतंत्र निदेशक नियुक्त किया है। कंपनी बोर्ड की 20 मार्च को हुई बैठक में यह निर्णय लिया गया। पीयूष पांडेय की यह नियुक्ति नामांकन और पारिश्रमिक समिति की सिफारिशों के आधार पर की गई है और यह 24 मार्च 2020 से प्रभावी होगी। पीयूष पांडेय का कहना है, ''कंपनी के बोर्ड में शामिल किए जाने को लेकर मैं काफी खुश हूँ। देश की मीडिया और एंटरटेनमेंट इंडस्ट्री में इस कंपनी का अमूल्य योगदान है।'' श्री पाण्डेय को विज्ञापन क्षेत्र में काम करने का 37 साल से ज्यादा का अनुभव है। उन्होंने दिल्ली के सेंट स्टीफन कॉलेज से पढ़ाई की है। वर्तमान में वह ऑगिल्वी एंड माथर के कार्यकारी अध्यक्ष हैं।

मिलिंद खांडेकर बीबीसी से अलग हुए

'बीबीसी (इंडिया)' के डिजिटल संपादक मिलिंद खांडेकर ने पद से इस्तीफा दे दिया है। खांडेकर ने अपने ट्विटर अकाउंट पर इसके बारे में जानकारी दी है। इस ट्वीट में खांडेकर का कहना है, ''बीबीसी इंडिया के साथ मेरा सफर काफी बेहतर रहा। इस दौरान कई नई चीजें सीखने का मौका भी मिला। भारत में बीबीसी ने काफी विस्तार किया है और मैं काफी सौभाग्यशाली हूँ जो इसका हिस्सा रहा। मैं अपने सभी साथियों को

धन्यवाद देता हूँ और उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। अपने अगले कदम के बारे में मैं जरूर जानकारी दूँगा।''

गौरतलब है कि मिलिंद खांडेकर ने अगस्त, 2018 की शुरुआत में एबीपी न्यूज में अपनी 14 साल की लंबी पारी को विराम दिया था। वे यहाँ मैनेजिंग एडिटर पद पर कार्यरत थे। सन 2016 में उनका कद बढ़ाकर उन्हें नई जिम्मेदारियाँ सौंपी गई थी। एबीपी न्यूज नेटवर्क में उनका योगदान हिंदी चैनल के साथ शुरू हुआ और धीरे-धीरे एबीपी न्यूज नेटवर्क के डिजिटल और क्षेत्रीय (बंगाली, मराठी और गुजराती) चैनलों की ओर भी बढ़ा।

बंगाल की जेलों में बजेंगे रेडियो

पश्चिम बंगाल की 57 जेलों में जल्द ही रेडियो स्टेशन खोले जाएँगे। बताया जाता है कि राज्य की ममता बनर्जी सरकार द्वारा जेलों में कैदियों के मनोरंजन और रहन-सहन के स्तर की बेहतरी के लिए शुरू की गई कवायद के तहत यह कदम उठाया जा रहा है। हालाँकि, देश की कई जेलों ने अपने रेडियो स्टेशन शुरू किए हैं, लेकिन इस राज्य की तमाम जेलों में एक साथ अपने-अपने रेडियो स्टेशन खोले जाएँगे। इस कवायद के तहत संगीत उपकरणों को रखने के लिए जेल परिसर में कमरा भी मुहैया कराया जाएगा।

मीडिया रिपोर्ट्स के अनुसार, पायलट प्रोजेक्ट के तौर पर दमदम केंद्रीय जेल में सरकार ने यह परियोजना शुरू की थी। वहाँ इस परियोजना के कारगर रहने पर अब राज्य की तमाम जेलों में इसे शुरू करने का फैसला किया गया है। शुरुआत में राज्य की छह केंद्रीय जेलों में इसे शुरू किया जाएगा। बताया जाता है कि हर सुधार गृह में प्रस्तावित रेडियो स्टेशन के लिए पाँच हजार गाने जुटाए गए हैं। इनके जरिये रोजाना आठ घंटे तक गीतों का प्रसारण किया जाएगा।

बंद हुआ सूर्या समाचार चैनल

हिंदी न्यूज चैनल 'सूर्या समाचार' अब बंद हो गया है। चैनल प्रबंधन ने कार्यालय पर ताला डाल दिया है। यहाँ कार्यरत सभी मीडियाकर्मियों को बाहर का रास्ता दिखा दिया गया है। कुछ दिन पूर्व ही यहाँ से करीब 30 लोगों को नौकरी समाप्ति का नोटिस थमा दिया गया था। बाकी बचे करीब 40 लोगों को भी कहा गया था कि चैनल बंद होने के बारे में एक मार्च को नोटिस चिपका दिया जाएगा। इसके बाद 31 मार्च तक चैनल को बंद कर दिया जाएगा। लेकिन प्रबंधन ने 31 मार्च की बजाय एक मार्च को ही चैनल को ताला लगा दिया है। गौरतलब है कि 'प्रियागोल्ड' बिस्किट की निर्माता कंपनी द्वारा संचालित इस चैनल को पिछले साल फरवरी में वरिष्ठ टीवी पत्रकार पुण्य प्रसून बाजपेयी के नेतृत्व में री-लॉन्च किया गया था। बाद में वाजपेयी अपने साथियों के साथ चैनल से अलग हो गए थे।

हिंदुस्तान टाइम्स में सोनल कालरा को बड़ी जिम्मेदारी

'एचटी सिटी' की प्रबंध संपादक सोनल कालरा को अब समूह ने एक नई जिम्मेदारी दी है। दरअसल, 'एचटी लाइफ स्टाइल' के लिए बनाए गए गए मैनेजिंग एडिटर और बिजनेस हेड के नए पदों पर भी वे अपना योगदान देंगी। हालाँकि इन पदों पर उनकी नियुक्ति तुरंत प्रभाव से लागू हो गई है। अपनी नई भूमिका में कालरा संपादकीय की अपनी मौजूदा जिम्मेदारी के अलावा एचटी सिटी के व्यवसाय के लिए अतिरिक्त जिम्मेदारी भी संभालेंगी। वे मनोरंजन और जीवनशैली की सामग्री के लिए डिजिटल और अखबार के बीच एक सामंजस्य स्थापित करने का भी काम करेंगी।

रश्मि ठाकरे 'सामना' की संपादक

मराठी और हिंदी भाषा में निकलने वाले शिवसेना के मुखपत्र 'सामना' का संपादक रश्मि

ठाकरे को बनाया गया है। वे महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री और शिवसेना के अध्यक्ष उद्धव ठाकरे की पत्नी हैं। महाराष्ट्र का मुख्यमंत्री बनने के बाद उद्धव ठाकरे ने संपादक के पद से इस्तीफा दे दिया था, जिसके बाद कार्यवाहक संपादक के तौर पर वरिष्ठ शिवसेना नेता और राज्यसभा सांसद संजय राउत इसकी जिम्मेदारी सँभाल रहे थे। साथ ही साथ वे इस अखबार के कार्यकारी संपादक की भूमिका में भी हैं और इस पद पर वे पहले की तरह बने रहेंगे। 23 जनवरी, 1988 को स्थापना के बाद से ही सामना के संपादक पद पर ठाकरे परिवार के सदस्य की मौजूदगी की परंपरा को नहीं बदला गया है।

सामना की शुरुआत शिवसेना सुप्रीमो बाल ठाकरे ने अपने विचार महाराष्ट्र के लोगों तक पहुँचाने के लिए की थी। बाल ठाकरे के निधन के बाद 2012 में उनके बेटे उद्धव ठाकरे ने 'सामना' का पदभार सँभाला था, लेकिन राज्य का मुख्यमंत्री बनने के बाद उद्धव ठाकरे ने संपादक पद से इस्तीफा दे दिया था और संजय राउत कार्यवाहक संपादक और कार्यकारी संपादक दोनों पद सँभाल रहे थे। लेकिन अब संपादक पद की जिम्मेदारी संभालने के बाद रश्मि ठाकरे इस मराठी दैनिक अखबार की स्थापना के बाद से तीसरी संपादक बन गईं हैं।

मिहिर मिश्र 'नेशनल वायस' के प्रबंध संपादक बने

रीजनल न्यूज चैनल 'नेशनल वॉयस' को फिर से लाँच किया जाएगा। चैनल कई बड़े नामों को अपने साथ जोड़ने की तैयारी में है। वरिष्ठ पत्रकार मिहिर मिश्र को चैनल का प्रबंध संपादक बनाया गया है। मिहिर मिश्र को पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करने का करीब 24 साल का अनुभव है। इस दौरान उन्होंने भारत से लेकर विदेशी धरती पर अपनी प्रतिभा का परचन लहराया है। मिहिर मिश्र ने वर्ष 1995-96 में 'दैनिक जागरण' के साथ पत्रकारिता करियर की शुरुआत की थी। उस दौरान 'दैनिक जागरण' का विस्तार करने में उन्होंने काफी अहम भूमिका निभाई। वर्ष 2002 में अमर उजाला जब उत्तरप्रदेश-उत्तराखंड के बाद दिल्ली आया तो मिहिर उसकी लॉन्चिंग टीम में शामिल थे। सहारा समय (उ.प्र.-उत्तराखंड) की लॉन्चिंग टीम में भी वह शामिल रहे हैं। उन्होंने 'टीवी टुडे समूह' में भी लंबी पारी खेली है। मिहिर मिश्रा ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी काम किया है और नाइजीरिया में न्यूज चैनल को स्थापित करने में बड़ी भूमिका निभाई है। यही नहीं, 'ऑल इंडिया रेडियो' और 'डीडी न्यूज' में भी उन्होंने काम किया है। न्यूज चैनल 'आर नाइन टीवी' संपादकीय टीम की कमान उन्हीं के हाथों में थी।

ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय

भोपाल के माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान पर वरिष्ठ पत्रकार तथा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग के अध्यक्ष और मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रोफेसर कृपाशंकर चौबे ने वृत्तचित्र (डाक्यूमेंट्री) का निर्माण किया है। इसका शीर्षक है - 'ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय'। यह वृत्तचित्र यूट्यूब पर उपलब्ध है। इसके अलावा, इस डाक्यूमेंट्री को महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर मीडिया गैलरी में भी देखा जा सकता है।

योद्धा पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी के शहादत दिवस पर पुण्य स्मरण

योद्धा पत्रकार

गणेश शंकर विद्यार्थी

जन्म : २६ अक्टूबर १८९० ♦ शहादत : २५ मार्च १९३१

गणेश शंकर का मार्ग सर्वोत्तम है

महात्मा गांधी

मुझ में तो गणेश शंकर विद्यार्थी बनना चाहिए। गणेश शंकर की तरह आप एक-एक आदमी अपना-अपना अलग शांति-दल बना सकते हैं। लेकिन सवाल है कि विद्यार्थी की तरह ऐसे कितने आदमी हैं? गणेश शंकर ने अहिंसा की सेना का एक बहुत ऊँचा आदर्श हमारे सामने रख दिया। वह भले ही मर गया, लेकिन उसकी आत्माहुति व्यर्थ नहीं गई है। उसकी आत्मा मेरे दिल पर काम करती रहती है। मुझे जब उसकी याद आती है तो उससे ईर्ष्या होती है। इस देश में दूसरा गणेश शंकर क्यों नहीं पैदा होता है? हम थोड़ी देर के लिए मान सकते हैं कि उसकी परम्परा समाप्त हो गई, लेकिन वह इतिहास में अमर हो गया, उसकी अहिंसा सिद्ध अहिंसा थी। उसी की तरह कुल्हाड़ी के प्रहार सहते हुए मैं शांतिपूर्वक मरूँ। एक तरफ से एक मनुष्य मुझ पर कुल्हाड़ी चला रहा हो, दूसरी तरफ से दूसरा बरछी मार रहा हो, तीसरा लाठी मार रहा हो और चौथा लात-घूँसे बरसाता जाता हो, ऐसी अवस्था में भी मैं खुद शांत रहूँ और लोगों से शांत रहने को कहूँ और खुद हँसता हुआ मरूँ, ऐसा भाग्य मैं चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे ऐसा मौका मिले और आपको भी मिले। गणेश शंकर को ऐसा ही मौका मिला था, इसलिए उसकी याद आने पर ईर्ष्या होती है। क्यों नहीं मुझे वह मौका मिलता? गणेश शंकर के जीवन से अहिंसा का पाठ सीखो। देखो, कितनी बहादुरी से हँसते हुए बिना खाए-पिए अपने भाइयों के हाथ से उसने मृत्यु पाई। इसी तरह की लड़ाई हमें अँगरेजों और गुण्डों-बदमाशों से लड़नी है। यदि हमारी ऐसी तैयारी नहीं है तो आप अहिंसा की पुकार करके घर आदि छोड़कर भागें नहीं, बल्कि आप अस्त्र-बल से उसका मुकाबला करके अपनी माँ-बहनों की रक्षा करें। परन्तु मैं जो चाहता हूँ वह तो गणेश शंकर का मार्ग है और वही सर्वोत्तम सरल साधन अपने दुश्मनों से बचने का है। मुझे तो रह-रहकर गणेश शंकर की याद आती है। उसी का आदर्श मैं आप लोगों के सामने रखता हूँ।

प्रस्तुति : विजयदत्त श्रीधर, संस्थापक-संयोजक, सप्रे संग्रहालय, भोपाल ❖ मोबाइल - 9425011467 ❖ ईमेल - sapresangrahalaya@yahoo.com

मध्यप्रदेश शासन

अपील

प्रिय भाइयो, बहनो

कोरोना वायरस के संक्रमण से देश को बचाने के लिए माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 21 दिन के देशव्यापी लॉकडाउन (तालाबन्दी) का आह्वान किया है। राष्ट्रहित में माननीय प्रधानमंत्री जी के आह्वान का स्वागत करते हुए हम सभी इसका पालन करने के लिए कृत–संकल्पित हैं ।

आप सब से मेरा अनुरोध है कि आप बिल्कुल भी परेशान न हों। इन 21 दिनों में आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने की जवाबदारी सरकार की है। रोज़मर्रा की जरूरी चीजें जैसे दूध, फल, सब्जी, किराना, दवाइयाँ आदि की दुकानें यथावत् खुलेंगी तथा सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराई जाएँगी।

महामारी की विभीषिका को देखते हुए आपका सहयोग अपेक्षित है।

आपका

(शिवराज सिंह चौहान)
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020

R.O. No. D-17002

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक विजयदत्त श्रीधर द्वारा दृष्टि आफसेट, भोपाल से मुद्रित तथा माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल (म.प्र.) 462 003 से प्रकाशित। संपादक : विजयदत्त श्रीधर